जून 2000 रू. 10/-
चन्दामामा

Every Saturday will be FUNDAY for children

of Maharashtra and elsewhere

An 8-page supplement to MID-DAY
with a lot of variety and in glorious colour
designed by CHANDAMAMA,
is being issued from MARCH 11, 2000.

HERE'S AN INVITATION OFFER
TO READERS OF MID-DAY

Subscribe to CHANDAMAMA (in any one of the 12 languages) at the SPECIAL RATE of Rs 96* for 12 issues (instead of Rs.120).

What you have to do:

Cut out the coupon appearing in MID-DAY – FUNDAY supplement and send it to the address below along with a cheque/DD for Rs 96.

PUBLICATION DIVISION
CHANDAMAMA INDIA LTD.
VADAPALANI, CHENNAI 600 026

*PLEASE NOTE: The offer closes on May 31, 2000

चन्दामामा

सम्पुट - 102 जून 2000 सञ्चिका-6

अन्तरङ्गम्

पंखवाला घोड़ा
(बेताल कथा)

भार्गव की चिढ़

स्वर्ण-सिंहासन

भारत की गाथा

Printed and Published by B. Viswanatha Reddi at B.N.K Press Pvt. Ltd., Chennai-600 026 on behalf of Chandamama India Limited, Chandamama Buildings, Vadapalani, Chennai-600 026. Editor: Viswam

संपादक
विश्वम

प्रधान कार्यालय :
चंदामामा प्रकाशन विभाग
चंदामामा बिल्डिंग्स
वडापलानि, चेन्नई - 600 026
फोन/फेक्स : 4841778
4842087
इ.मैल : Chandamama@vsnl.com

मुंबई कार्यालय
2/B, नाज बिल्डिंग्स,
लेमिंगटन रोड, मुंबई - 400 004.
फोन : 022-388 7480
फेक्स : 022-388 9670

**For USA
Single copy $2
Annual Subscription
$20
Mail remittances to
INDIA ABROAD
43, West 24th Street
New York, NY 10010
Tel : (212) 929-1727
Fax : (212) 627-9503**

संस्थापक

चक्रपाणि, बी. नागि रेड्डी

छुट्टियों के मध्य में

शेक्सपीयर के अनुसार ''यदि हम सारा साल छुट्टियाँ मनाते रहें तो खेलना भी उतना ही कठिन हो जायेगा जितना काम करना ।'' दूसरे शब्दों में, जो सच्चाई से पूरे समय तक काम करते हैं, वे ही छुट्टियों का आनन्द ले सकते हैं ।

इस समय हमारे अधिकांश पाठक वर्ष की सबसे लम्बी छुट्टी - ग्रीष्मावकाश पर हैं । ऐसे अवसरों का उपयोग हम किस प्रकार करते हैं, उससे हमारे जीवन की गुणवत्ता का संकेत मिलता है । जब हमें कोई काम दिया जाता है, तो हम उसे पसन्द करें या न करें, करना ही पड़ता है । लेकिन जब हमें काम के चुनाव की आजादी दी जाती है, तब हम वैसा ही काम चुनते हैं जो सचमुच हमें पसन्द है ।

छुट्टियाँ हममें से बहुत को यह आजादी देती हैं । तब हम ऐसे कामों को कर सकते हैं, जिन्हें हम पहले करना चाहते थे, लेकिन उनके लिए हमारे पास समय नहीं था । समस्या यह है कि बहुत लोगों को यह पता नहीं चलता कि इस आजादी का सर्वोत्तम उपयोग कैसे करें । संभव है, उनके पास कई योजनाएँ हों और वे कई काम करना चाहते हों; लेकिन कहाँ से शुरू करें, यह मालूम न होने के कारण उलझन बनी रहती है । और एक दिन अचानक यह देख कर हम मायूस हो जाते हैं कि जिन छुट्टियों का इतना इंतजार था, वे अब खत्म हो गईं !

लेकिन कोई कारण नहीं है कि शेष छुट्टियों के सदुपयोग के लिए हम कार्यक्रम न बनायें । कम से कम, हम चुनिंदा पुस्तकों को पढ़ सकते हैं, खास कर अपने देश के इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकें । अपने पर्यावरण के सुधार-कार्य में भी प्रत्येक दिन घण्टा - दो घण्टा समय दे सकते हैं; उचित स्थलों पर वृक्षारोपण कर सकते हैं - ऐसे स्थल बहुत उपलब्ध हैं । इस कार्य में सहायता देने के लिए संस्थाएँ भी हैं ।

प्रथम कार्य - पुस्तक-पठन से हमें व्यक्तिगत रूप से लाभ मिलेगा; दूसरे कार्य - वृक्षारोपण से सम्पूर्ण पृथ्वी लाभान्वित होगी ।

अस्तु, तुम सब को छुट्टियाँ मुबारक हो ! शेष छुट्टियाँ ही सही !
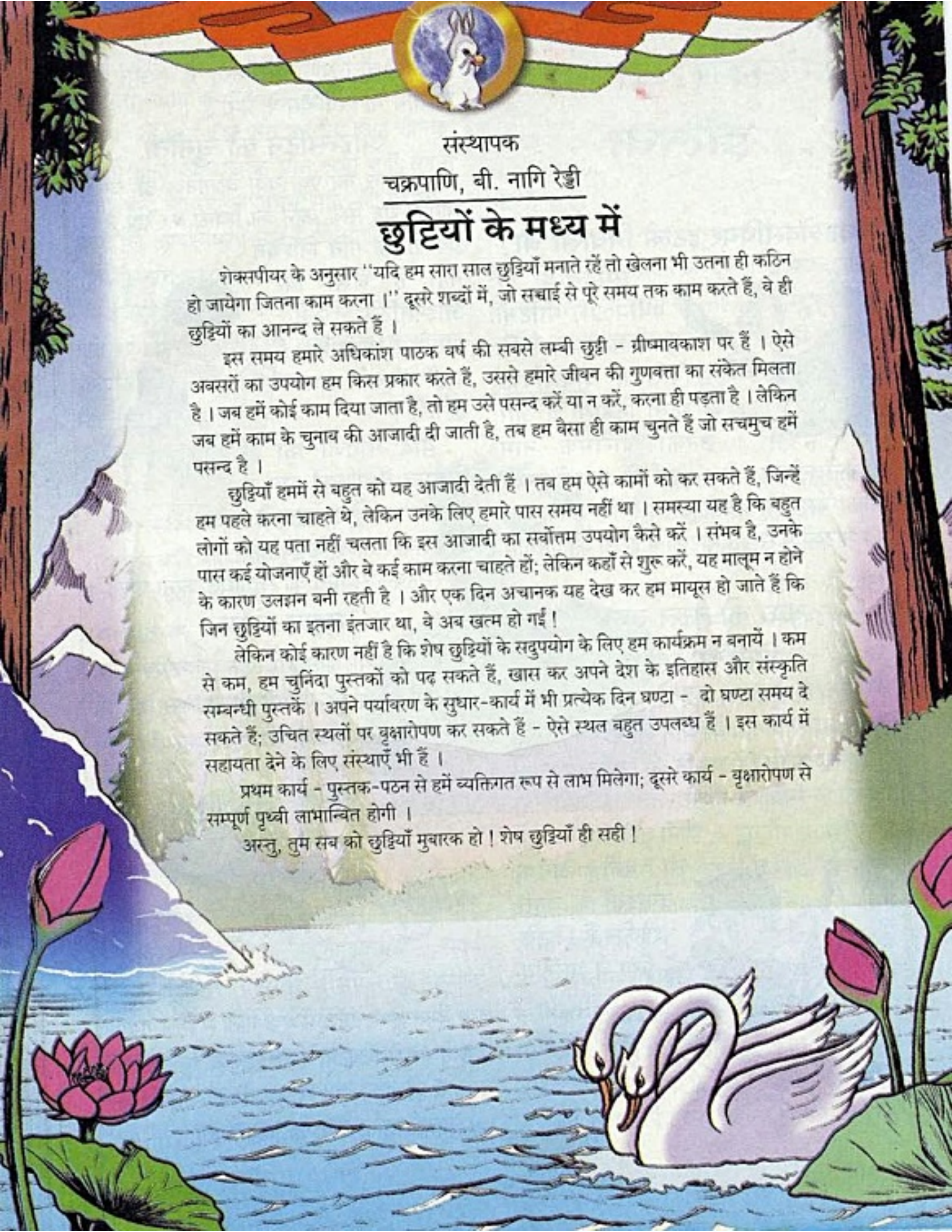
समाचार झलक

क्या शेक्सपियर इटली निवासी था?

सिसली के 71 वर्षीय प्रो. मार्टिनो लुवारा का कहना है कि विलियम शेक्सपियर इटली निवासी थे और उनका प्रारंभिक नाम माइकेलेंजलो था। वे 24 वर्ष की आयु में लन्दन आकर बस गये। यही कारण है कि उनके कुल 37 नाटकों में से 15 नाटकों में इटली की पृष्ठभूमि है।

बाघ की नस्ल खत्म होती जा रही है

ब्रिटेन के पर्यावरण मंत्री का कहना है कि यदि शिकार-चोरों से बाघ की मौत को नहीं रोका गया तो अगले दस वर्षों में प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट रचना - बाघ से पृथ्वी खाली हो जायेगी। चीनी लोग बाघ के अंगों से बनी अनेक दवाइयों के बहुत शौकीन हैं। इसके लिए वे भारतीय शिकार-चोरों पर निर्भर करते हैं। और स्वयं भारतीय भी बाघ चर्म के प्रेमी हैं।

आइन्सटिन को चुनौती

पुर्तगाल का एक युवा वैज्ञानिक डॉ. जोओ मैगिजो यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा है कि प्रकाश की गति निश्चित नहीं है जैसा कि आइन्सटिन ने प्रमाणित किया है। इसमें परिवर्तन आता रहता है।

यदि मैगिजो का सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो बीसवीं शताब्दी के एक बहुत बड़े स्मारक-सिद्धान्त को संशोधित करना पड़ेगा।

महान संगम

मई के प्रथम सप्ताह में एक महान एवं दुर्लभ खगोलीय घटना हुई। हमारे सौर-मण्डल के सभी मूल सदस्य - सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, शनि

तथा मंगल बृषभ राशि में एक पंक्ति में मिल गये। पिछली बार ऐसी घटना पन्द्रह शताब्दी पूर्व मई सन् 229 में हुई थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह संगम पृथ्वी के लिए मंगलकारी है।

इस महीने जिनकी जयन्ती है :

इस शताब्दी के प्रथम दशक में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करनेवाले गीत - 'बन्दे मातरम' को भला कौन ऐसा भारतीय होगा जो नहीं जानता होगा और उसके प्रति श्रद्धा नहीं रखता होगा? बन्दे मातरम् का अर्थ है माता की वन्दना । कहने की आवश्यकता नहीं है कि यहाँ माता का तात्पर्य भारत माता से है ।

हजारों देश-भक्तों ने इसी संजीवनी-गीत को गाते हुए ब्रिटिश शासकों का अमानुषिक अत्याचार झेल लिया और बहुतों ने इस मंत्र का जाप करते हुए हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा चूम लिया ।

वह कितना मंगलमय क्षण रहा होगा जब कवि बंकिम चन्द्र ने इस गीत की रचना की होगी । उन्होंने इस गीत को अपने उपन्यास 'आनन्द मठ' के एक अंश के रूप में लिखा था । इस उपन्यास का कथानक अत्यन्त रोचक है जिसका संकेत भारत के प्रारंभिक अंग्रेज शासक - ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध एक असामान्य विद्रोह से मिला । असामान्य इसलिए कि इस विद्रोह का सूत्रपात करने वाले संन्यासी थे । बंकिम चन्द्र ने सोचा कि शक्तिशाली विदेशी शासकों से संघर्ष करनेवालों को संन्यासियों के समान ही निस्वार्थ होना चाहिये । जबकि विद्रोही संन्यासी काली माँ के भक्त थे, स्वतंत्रता सेनानियों को भारत माँ का भक्त होना चाहिये । उनका यह गीत बन्दे मातरम् भावसिक्त भाषा में मातृभूमि की गरिमा से ओत-प्रोत है ।

ऋषि बंकिमचन्द्र

ऋषि बंकिम चन्द्र सन 1838 में 28 जून को इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए । ये कोलकाता विश्वविद्यालय के प्रथम दो स्नातकों में से एक थे । उन्होंने दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के रूप में कार्य किया । वे अपने कार्य की दक्षता के लिए प्रसिद्ध थे । लेकिन सबसे बढ़कर ये अपनी मातृभूमि के महान प्रेमी और भक्त थे ।

आधुनिक बंगला गद्य के विकास में इनका योगदान अनुपम है । उन्होंने भाषा में एक नये प्राण का संचार कर दिया । वे एक साथ ही उच्च कोटि के उपन्यासकार, कवि, पत्रकार और निबन्धकार थे । उन्होंने अंग्रेजी में भी रचनाएँ कीं । भारतीय साहित्य के कुछ इतिहासकारों का कहना है कि ''राजमोहन की पत्नी'' किसी भारतीय द्वारा रचित अंग्रेजी में पहला उपन्यास है ।

''भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत'' श्री अरविन्द ने बंकिम चन्द्र को ऋषि अथवा द्रष्टा कवि से सम्बोधित किया है । इसलिए उनकी भावी पीढ़ियाँ उन्हें ऋषि बंकिम चन्द्र के रूप में ही याद करती हैं ।

सन् 1894 में इनका देहान्त हो गया ।

इस अंक के साथ हम अपनी सृजनात्मक
प्रतियोगिता को नया आकार दे रहे हैं

सृजनात्मक प्रतियोगिता

नीचे एक कहानी का आरंभ दिया गया है. इसमें एक रोचक कथा बनने के सभी उपादान मौजूद हैं. किन्तु यह 'सृजन' तुम्हारे हाथों में है । तुम्हें सभी संभवनीय कथाक्रमों की कल्पना करनी है और कहानी का अन्तिम रूप देना है । और एक आकर्षक शीर्षक भी। इस कहानी को एक सौ से लेकर दो सौ शब्दों के बीच पूरा करना है। न कम, न अधिक । सर्वश्रेष्ठ रचना पर आकर्षक पुरस्कार दिया जायेगा और उसे पत्रिका में प्रकाशित भी किया जायेगा। यह प्रतियोगिता हमारे बाल-पाठकों के लिए है। रचना के साथ स्पष्ट अक्षरों में अपना नाम, आयु, कक्षा, विद्यालय का नाम और पिन कोड के साथ अपने घर पता लिखना न भूलें। यह प्रमाणित कर दें कि आप प्रौढ़ व्यक्तियों से कहीं अच्छा लिख सकते हैं। इसलिए उनकी मदद न लें।

गंगा नगर के शाही बागों का दृश्य सदा सुन्दर दिखाई देता था। इनमें अनेक फलदायी बृक्ष और फूल देनेवाले पौधे थे। माली एक-एक वृक्ष और पौधे की अपने बच्चे की तरह सावधानी से देखभाल करता था।

इन बागों में बहुत बन्दर थे। किन्तु ये साधारण बन्दरों से भिन्न थे । इन्हें फूलों से बहुत प्यार था। ये माली को फूलों की देखभाल करते हुए देखा करते थे। ये कभी क्यारियों को बर्बाद नहीं करते और न फूलों को तोड़ते । इसलिए माली के साथ इनकी दोस्ती हो गई ।

एक दिन माली को कहीं बाहर जाना था। उसके पीछे में पौधों में पानी कौन डालेगा? वह विचार करने लगा और अन्त में उसके मन में एक विचार आया । उसने कुछ बन्दरों को बुला कर एक दिन के लिए अपना काम कर देने का अनुरोध किया। वे सब राजी हो गये । उन सब ने पानी डालने की बाल्टी देखी थी और वे यह भी जानते थे कि पानी कहाँ से लाना है।

अगले दिन सारे बन्दर इकट्ठे हो गये और पौधों में पानी डालने लगे । उनका मुखिया दूर से काम की निगरानी कर रहा था। किन्तु, अचानक उसे एक सन्देह हो गया । ''क्या पौधों को पर्याप्त पानी मिल रहा है? या कुछ पौधों जरूरत से ज्यादा पानी तो नहीं जा रहा है?''

इस समस्या का समाधान उसने कैसे किया? चलो, अपनी लेखनी और कागज उठाओ । तुम्हारी प्रविष्टि हमें ३० जून तक मिल जानी चाहिये। विजयी प्रविष्टि अगस्त अंक में प्रकाशित होगी ।

- संपादक

मई 2000 के अंक में प्रकाशित प्रश्नोत्तरी के उत्तर

१. यह था सरोवर पर बैठे बगुले के रूप में मृत्यु के देवता यम द्वारा पूछे गये एक प्रश्न का युधिष्ठिर द्वारा दिया गया उत्तर ।

२. अ. शकुनि गान्धार का राजकुमार था।
   ब. महामेरु वह स्थान था जहाँ केसरी रहता था ।
   स. सहदेव ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के पूर्व महिष्मती के राजा को पराजित किया था।
   द. भरत की माँ केकयी, केकय नरेश की पुत्री थी ।
   इ. वाल्मीकि ऋषि का आश्रम तमसा नदी के किनारे था ।

वेताल कथा

पंखवाला घोड़ा

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया और पेड़ पर से शव को उतार और अपने कन्धे पर डाल कर यथावत श्मशान की ओर बढ़ने लगा । उस घोर अंधेरी और तूफ़ानी रात में बादलों के गर्जन, बिजली की चमक और भूत-प्रेतों की चीख-पुकार से वातावरण और भयावना हो गया था । लेकिन फिर भी विक्रमार्क निर्भय होकर आगे बढ़ता गया । जैसे ही वह दिल थर्रा देने वाले श्मशान-स्थल के निकट आया कि शव के अन्दर छिपे वेताल ने कहा, - ''राजन ! मैं तुम्हें यह कहते-कहते थक गया कि तुम्हारा यह श्रम व्यर्थ है । व्यर्थ ही तुम आधी रात में खतरों से खेल रहे हो । जिस उद्देश्य और कामना की पूर्त्ति के लिए इतना दु:साहसिक कार्य कर रहे हो, वह कभी पूरी

नहीं होगी । बुद्धिमान व्यक्ति पहले से विचार कर लेता है कि जिस कार्य की सिद्धि के लिए वह पुरुषार्थ करने जा रहा है, वह सिद्धि उसके अनुरूप है या नहीं या उस सिद्धि के अनुरूप वह है या नहीं । कठिन पुरुषार्थ करके किसी इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेना ही काफी नहीं होता । उस वस्तु के योग्य या अनुरूप होना अधिक महत्वपूर्ण है ।

"शान्ति पुर राज्य का एक युवक - प्रताप, एक ऐसा व्यक्ति था जिसने असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य को भी सम्भव बना दिया लेकिन उस कार्य के योग्य न होने के कारण उसका सारा श्रम व्यर्थ चला गया । तुम्हें समझाने के लिए मैं उसकी कहानी सुना देता हूँ । ध्यान से सुनो ।"

यह कह कर वेताल ने उसे यह कहानी सुनायी :

शांतिपुर के राजा इन्द्रसेन की एक बेटी थी - देवदत्ता । देवदत्ता जब विवाह योग्य हो गई तो राजा ने मंत्रियों को उसके लिए एक योग्य राजकुमार की तलाश करने की आज्ञा दी । वे आस-पास के राज्यों में दूत भेज कर पता करने लगे ।

देवदत्ता को जब यह पता चला तो उसने पिता से कहा, - "पिताश्री, बचपन से मेरे मन में एक प्रबल इच्छा है । मैंने यह निश्चय किया है कि जो व्यक्ति मेरी इस इच्छा को पूरा करेगा, मैं उसी से विवाह करूँगी ।"

"वह कौन-सी प्रबल इच्छा है, मुझे बताओ तो सही । मैं तुम्हारे लिए वैसा ही राजकुमार ढूँढ कर लाऊँगा ।" राजा ने स्नेहपूर्वक अपनी बेटी से यह प्रश्न किया।

"मै चाहती हूँ कि स्वच्छ धवल चाँदनी में श्वेत पंखवाले घोड़े पर बैठकर आकाश में विचरण करूँ । जो भी राजकुमार या व्यक्ति ऐसा अश्व लाने में सफल होगा, मैं उसी से विवाह करूँगी । मैंने ऐसा अटल निश्चय कर लिया है । यदि ऐसा नहीं हो पाया तो मैं आजीवन अविवाहित रहूँगी।" राजकुमारी ने दृढ स्वर में कहा ।

राजा यह सुनकर आश्चर्य के साथ-साथ चिन्ता में डूब गया । सोचने लगा, - "पंखवाले घोड़ों के बारे में किस्सा-कहानियों में पढ़ा है । लेकिन धरती पर ऐसे घोड़े मौजूद हैं, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता । कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना बड़ा शूरवीर हो, इस असंभव कार्य को नहीं कर सकता ।"

राजा इन्द्रसेन ने अपनी बेटी से कहा कि यह असंभव कार्य है और इसे पृथ्वी का कोई मानव पूरा नहीं कर सकता, स्वर्ग के देवता भले ही कर दें। इसलिए इस हठ को त्याग दो । लेकिन राजकुमारी अपने हठ पर अड़ी रही ।

अन्त में विवश होकर राजा ने देश भर में यह घोषणा करवा दी कि जो राजकुमार या व्यक्ति श्वेत पंखवाला अश्व लायेगा, उसी से राजकुमारी का विवाह सम्पन्न होगा ।

कई अन्य राज्यों के राजकुमारों ने प्रयास किया लेकिन सफल नहीं हो सके । एक वर्ष बीत गया ।

उसी राज्य में प्रताप नाम का एक सुन्दर और साहसी युवक था । उसने भी राजा की यह घोषणा सुनी । लेकिन एक साल तक जब ऐसा कोई राजकुमार सामने न आ सका जो इसे पूरा कर सके तो उसने युवकों के लिए इसे एक चुनौती समझा । वह मन ही मन इस पर विचार करता रहा ।

बीस वर्ष का यह युवक प्रताप अपने परिवार में अकेला ही रह गया था और फूल बेच कर तथा फूलों की सजावट कर अपनी आजीविका चलाता था । रंग-बिरंगे फूलों से माला बनाना, उत्सवों पर तोरण-द्वार सजाना, मंदिरों में भगवान की मूर्तियों का पुष्पों से शृंगार करना ही इसका व्यवसाय था । उसकी कलात्मक पुष्प-सज्जा देखने योग्य होती थी । मन्दिर की मूर्तियों को वह भक्ति के साथ सजाता था । इसलिए पुजारी को वह बहुत प्रिय था ।

एक दिन उसने पुजारी से राजा की घोषणा का प्रसंग बताते हुए पूछा, - ''पुजारी जी ! क्या इस लोक में पंखवाले घोड़े पाये जाते हैं? या यह केवल किताबों में ही पाया जाता है?''

पुजारी ने मुस्कुराते हुए कहा, - ''पंख वाले घोड़े पृथ्वी पर भले ही न हों, किन्तु कुछ ऐसे अन्य लोक भी हैं जहाँ ये पाये जाते हैं । वहाँ देवों की कई जातियाँ निवास करती हैं । हमारे राज्य के निकट ही विंध्य पर्वतमालाओं की घाटियों में कितने ही प्राचीन मन्दिर हैं । जिन्होंने वहाँ जाने का साहस किया है, उनका कहना है कि वहाँ के सरोवरों में स्नान करने के लिए गन्धर्व कन्याएँ अपने लोक से प्रायः आती रहती हैं । वे स्वयं अपनी आँखों से उन्हें देखने का दावा भी करते हैं ।''

प्रताप को पुजारी की बातों पर यकीन हो गया।
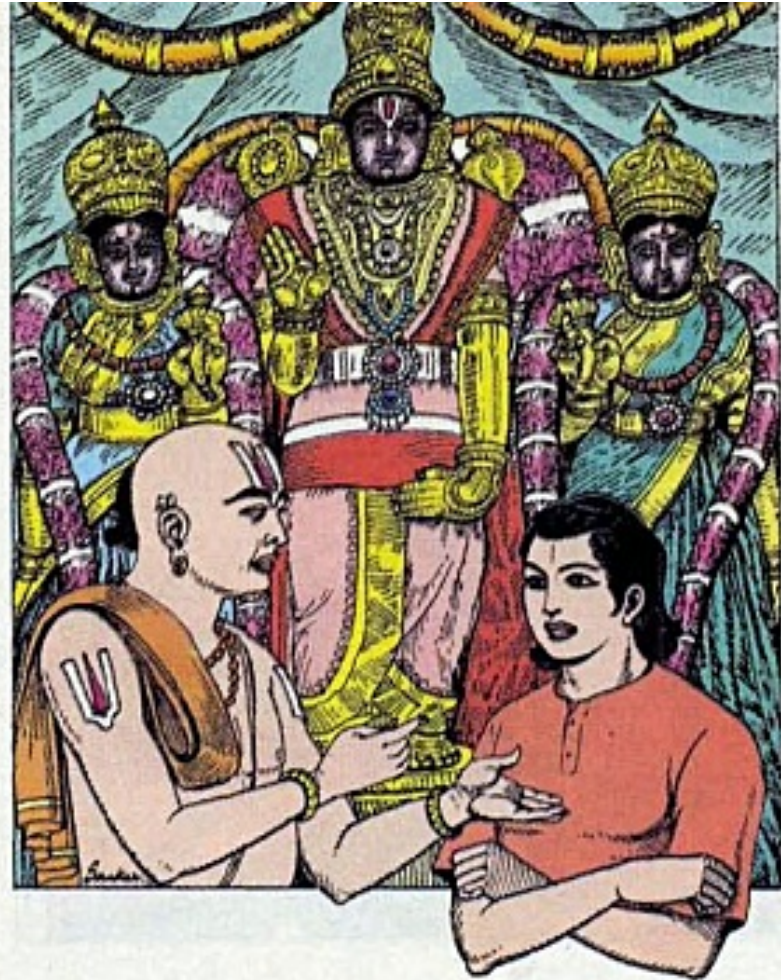
वह दूसरे ही दिन सवेरे विंध्य पर्वतों की ओर चल पड़ा । जंगलों और पहाड़ों को पार करता हुआ वह सूर्यास्त से पूर्व एक रम्य घाटी में पहुँचा । वहाँ एक सुन्दर जल-प्रपात था और पास ही कुछ गुफाएँ थीं । जल-प्रपात के चतुर्दिक सुन्दर घने वृक्ष थे । उसके चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों से लदे पौधों का एक विशाल क्षेत्र था । वहाँ का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य देख कर वह ठगा-सा रह गया। डूबते हुए सूरज के मद्धिम प्रकाश में वह स्थान स्वर्गीय आभा से मण्डित अतिमानवीय लगता था ।

फूलों को देख कर उसका कलाकार-मन मचल उठा । उसने घने वृक्षों के कुंज में लताओं से एक झूला बनाया और उसे रंग-बिरंगी फूल-मालाओं से सजाया । तब तक सूर्यास्त हो गया था । शुक्ल पक्ष होने के कारण चाँद की रोशनी पर्णावलियों से छन कर झूले पर पड़ने लगी थी ।

सारा दृश्य उसे स्वप्न लोक के समान लगने लगा। वह एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर इस अनुपम दृश्य का आनन्द लेने लगा। उसने अपना कंठ और भुजाएँ भी पुष्प-मालाओं से सजा लीं।

दो प्रहर रात बीत जाने के बाद आकाश मार्ग से कुछ गन्धर्व कन्याएँ वहाँ उतरीं। उन सबने जल-प्रपात में स्नान किया और एक को छोड़ कर शेष गन्धर्व-कन्याएँ वापस चली गईं। उसका नाम चारुशीला था। उसकी दृष्टि जैसे ही झूले पर पड़ी, वह आनन्द मग्न हो उस पर झूलने लगी।

कुछ देर झूलने के बाद जब वह जाने लगी तो एक बार उसने झूले को ध्यान से देखा। जितना वह उसे ध्यान से देखती, उतना ही वह हैरान रह जाती। उसे लगा कि झूला प्राकृतिक रूप से वृक्ष की शाखाओं से निकली लताओं से अपने आप बन गया है। उसमें सजे हुए पुष्प भी उन लताओं में से स्वाभाविक रूप से खिले फूल लग रहे थे। वह उसे देख चकित और मुग्ध थी। वह सोच रही थी कि यह असंभव है कि पत्तों की तरह झूला भी वृक्ष में फला है। फिर किस कलाकार का यह जादू है?

अभी चारुशीला सोच ही रही थी कि झूले के निकट मंद-मंद मुस्काते हुए एक सुन्दर युवक को देख उसका ध्यान टूट गया।

''कौन? मानव के लिए वर्जित इस निर्जन वन में रात्रिकाल में आने वाले तुम कौन हो?'' चारुशीला ने प्रश्न किया।

''आप हम लोगों से भिन्न अनुपम सुन्दरी अलौकिक गन्धर्व कन्या लगती हैं, किन्तु मैं एक सामान्य मनुष्य हूँ और एक विशेष प्रयोजन से यहाँ आने का साहस जुटा पाया हूँ। यदि आप सचमुच गन्धर्व कन्या हैं तो आप से ही सहायता लेने आया हूँ। मैं फूलों का कलाकार हूँ और आप लोगों की प्रसन्नता के लिए ही मैंने पुष्पों और लताओं से यह झूला बनाया है।'' प्रताप ने बड़ी विनम्रता और शिष्टता से कहा।

''अद्भुत! यदि तुमने ही यह झूला बनाया है तो तुम एक असाधारण कलाकार हो। और बधाई के पात्र हो। बोलो, तुम मुझसे क्या सहायता चाहते हो? यदि कुछ कर सकी तो मुझे प्रसन्नता होगी।

प्रताप ने विस्तार से उसे यहाँ आने का उद्देश्य बताया।

''हाँ, हमारे गन्धर्व लोक में श्वेत पंख वाले घोड़े जरूर हैं, लेकिन मैं तुम्हें उस स्थान पर केवल पहुँचा सकती हूँ, घोड़े लाने में कुछ मदद नहीं कर सकती। शेष कार्य तुम्हें स्वयं अपने बुद्धि-बल से करना होगा।'' इतना कह कर गन्धर्व कन्या ने प्रताप को एक पुष्प हार में बदल दिया और उसे अपने गले में डाल गन्धर्व लोक में वहाँ पहुँच गई जहाँ श्वेत पंख वाले घोड़े थे। वहाँ पहुँच कर

उसने प्रताप को पुनः मानव शरीर में बदल दिया और स्वयं वहाँ से चली गई ।

प्रताप गन्धर्व लोक के श्वेत पंखवाले घोड़ों की सुन्दरता देख कर चकित था । वहाँ की हर चीज - पेड़ पौधे, भवन, धरती, आसमान स्वप्न की तरह सुन्दर और कोमल थे ।

उसने एक घोड़े को वहाँ के पुष्पों और पत्तियों से अलंकृत किया और अपने शरीर पर के फूलों से माला बनाकर उसके गले में डाल दिया । उससे घोड़े का सौन्दर्य और निखर गया ।

तभी घोड़े ने कहा, - "देखो, मंगल वाद्य की ध्वनि आ रही है । थोड़ी देर में गन्धर्व राज स्वर्ण गंभीर अपने जन्मोत्सव पर अपनी सवारी के लिए अश्व का चुनाव करने इधर ही आयेंगे । यदि मैं भाग्य से चुन लिया गया तो तुम्हारी मनोकामना पूरी कर दूँगा । तुम्हारी सजावट के कारण मैं सचमुच बहुत सुन्दर लग रहा हूँ । राजा जब इधर आयें तो तुम उद्यान में छिप जाना । राजा को महल में छोड़कर मैं रात को तुमसे मिलूँगा ।"

गंधर्वराज उस अश्व के सौन्दर्य पर सचमुच मुग्ध हो गया । उसने वर्ष भर की सवारी के लिए उसे ही चुना । उस घोड़े की पूजा-अर्चना के बाद राजा ने उस पर सवारी की । राजा जब राज भवन में चले गये तो अश्व प्रताप के पास आकर बोला, - "मानव युवक, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ क्योंकि तुम्हारे अलंकरण के कारण ही मुझे राजा की सवारी बनने का सौभाग्य मिला है । बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?"

प्रताप ने घोड़े को गंधर्व लोक आने का अपना उद्देश्य बताया । प्रताप की बात सुनकर घोड़े ने कहा, - "देखो युवक ! तुम निस्सन्देह एक साहसी युवक होने के साथ-साथ एक महान कलाकार भी हो । इन्हीं गुणों के कारण तुम पृथ्वी से गंधर्व लोक

तक आ गये । फिर भी तुम्हारा राजकुमारी से विवाह कर राजा बनने का सपना देखना अनुचित है । वह तुम्हारे स्वाभाविक धर्म और मनोवृति के अनुकूल नहीं है । राजधर्म कठोर धर्म है और कला और विशेष कर पुष्प अलंकरण की कला पुष्प की ही तरह कोमल है । फिर भी, जैसा कि मैंने वचन दिया है, मैं उसका पालन अवश्य करूँगा । चलो, मेरी पीठ पर बैठो, मैं तुम्हें राजकुमारी के पास ले चलता हूँ ।"

प्रताप घोड़े की बात सुन कर चिंतित हो गया। फिर भी कुछ सोच कर वह अश्व पर बैठ गया । थोड़ी ही देर में आकाश मार्ग से उड़ता हुआ वह शांतिपुर राज्य के राज उद्यान में उतरा ।

राजकुमारी चाँदनी रात में उद्यान के प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेती हुई श्वेत पंख वाले अश्व के सपने में खोई हुई थी । तभी उद्यान में एक श्वेत पंखवाले अश्व पर एक सुन्दर युवक को देख कर

बह विस्मित रह गई ।

घोड़े से उतर कर प्रताप राजकुमारी के पास आकर बोला, - "राजकुमारी ! बचपन से जिस पंख वाले अश्व का सपना आप देख रही थीं, बह आप की आँखों के सामने है । इस पर बैठ कर जी भर के चाँदनी आकाश में विहार कीजिये ।" इतना कह कर प्रताप वहाँ से चला गया ।

बेताल ने यह कहानी सुना कर विक्रमार्क से कहा, - "राजन ! प्रताप ने जिस लक्ष्य की पूर्ति के लिए इतना साहस और श्रम किया, उस लक्ष्य के निकट पहुँच कर उसे तिलांजलि दे दी । क्या वह विवेकहीन था या उसकी मति मारी गई ? उसने ऐसा आचरण क्यों किया? क्यों नहीं उसने राजकुमारी से विवाह किया? यदि इसका समाधान जानते हुए भी नहीं बताओगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे ।"

विक्रमार्क ने वेताल का सन्देह दूर करने के लिए अपना मौन भंग करते हुए कहा, - "प्रताप ने प्रारम्भ से ही राजकुमारी के साथ विवाह में रुचि नहीं दिखायी । बह साहसी था परन्तु महत्वाकांक्षी नहीं था । उसने राजकुमारी से विवाह करने के लालच में पंखवाले घोड़े की तलाश नहीं की, बल्कि उसने इसे युवकों के लिए चुनौती समझ कर उसकी खोज शुरू की । उसने यह चुनौती तब स्वीकार की जब देश भर के राजकुमार इस कार्य में असफल हो गये ।

राजकुमारी से विवाह नहीं करने का दूसरा कारण था कि पंख वाले घोड़े की बात उसे अच्छी लगी । प्रताप साहसी होते हुए भी कठोर हृदय नहीं था । बह पुष्प अलंकरण की कला में दक्ष होने के कारण स्वभाव से कोमल और संवेदनशील था । पुष्पों, लताओं और पत्तों से उसका प्राकृतिक लगाव था । इनके स्वाभाविक सौन्दर्य को अपनी कल्पना से और निखार देना ही उसका कर्म और धर्म था । बह राजभवन में कभी सुखी नहीं रह सकता था । पंखवाले घोड़े की बात से उसे अपने स्वाभाविक धर्म का मर्म समझ में आ गया ।

इसलिए बहुत विचार करने के बाद प्रताप ने यह विवेकपूर्ण निर्णय लिया कि वह राजकुमारी से विवाह न कर पूर्ववत् सामान्य जीवन बितायेगा । राजा बनने के बाद शायद उसे उतना आनन्द नहीं आता, जितना उसे निःस्वार्थ भाव से राजकुमारी का असंभव-सा प्रतीत होनेवाला सपना पूरा करने में आया ।

राजा का मौन-भंग करने में सफल होते ही वेताल शव सहित पुनः उसी पेड़ पर उड़ कर चला गया ।

राक्षस का रोग

पुराने जमाने की बात है । एक घने जंगल के किनारे एक गाँव में एक कुशल वैद्य रहता था । नाम था रघुनन्दन । उसकी दवा अचूक होती थी। दवा खाते ही रोग भाग जाता । इसलिए उसका घर सदा रोगियों से भरा रहता था ।

रघुनन्दन अपने रोगियों से पैसे नहीं माँगता था । लेकिन लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वयं कुछ न कुछ दे जाते थे । इस प्रकार उसका निर्वाह हो जाता था । गरीबों से वह बिलकुल नहीं लेता था।

उसकी पत्नी भानुमति को पति की यह उदारता अच्छी नहीं लगती थी । वह इस घर में बहुत आशा लेकर आयी थी । सोचा था कि इतने बड़े वैद्य का घर तो कीमती सामानों से भरा होगा । वहाँ पहनने को मूल्यवान रेशमी साड़ियाँ मिलेंगी । स्वर्ण आभूषणों से शरीर लदा रहेगा । परन्तु यहाँ तो बस मुश्किल से दो वक्त की रोटी मिल रही थी । उसके सारे सपने टूट गये ।

एक दिन आधी रात को किसी ने दरवाजा खटखटाया । पति-पत्नी दोनों की नींद खुल गई। भानुमति बड़बड़ाने लगी, - ''इस घर में तो रात को भी चैन की नींद नसीब नहीं, हे भगवान ! जब देखो तो रोगी चले आ रहे हैं ।'' फिर भी वह विवश होकर उठी और दरवाजा खोलने गयी । वैद्य भी पीछे-पीछे गया ।

दरवाजा खोलते ही दोनों भय से काँपने लगे । सामने एक भीमकाय राक्षस खड़ा था । भानुमति चीखती हुई घर के अन्दर घुस गयी ।

''डरो नहीं । मैं निकट के जंगल का रहनेवाला राक्षस हूँ । कुछ दिनों से मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है । तुम्हारा नाम सुनकर तुम्हारे पास चिकित्सा के लिए आया हूँ ।'' यह कहता हुआ वह हाँफने लगा और सिर पर हाथ रख कर बैठ गया ।

यह सुनकर रघुनन्दन और भानुमति की जान में जान आयी ।

''क्या कष्ट है आपको ?'' निर्भय होकर वैद्य ने पूछा ।

राक्षस ने लम्बी साँस लेते हुए कहा, - ''हर समय बहुत प्यास लगती रहती है । हाथ-पाँव

कल्याण राम

और तलवों में बहुत दर्द है । शरीर शिथिल रहता है । लगता है, प्राण निकल गये हों । कमजोरी इतनी कि चला नहीं जाता ।''

वैद्य ने उसकी नाड़ी की जाँच करके कहा, - ''विलम्ब से आये हो । रोग बहुत बढ़ चुका है । यह प्राणघातक असुरमेह रोग है । लेकिन कोई बात नहीं । मेरी दवा का नियमित रूप से सेवन करोगे तो महीने भर में पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे ।''

यह कह कर वैद्य ने उसे लड्डू के आकार की दर्जन भर गोलियाँ खिलायीं और एक घड़ा काढ़ा पिलाया । फिर कहा, ''कुछ पलों में ही दवा का प्रभाव अनुभव करोगे । दवा का असर शुरू हो जाये तो चले जाना ।''

राक्षस ने सचमुच चन्द पलों में ही स्फूर्ति का अनुभव किया । उसने कृतज्ञता प्रकट कर जाते हुए कहा, - ''कल भी मैं इसी समय आऊँगा ।''

राक्षस के जाते ही भानुमति ने गुस्से में दरवाजा बन्द किया और पति को कोसते हुए कहा, - ''मनुष्यों से तो पैसे नहीं माँगते, कम से कम इस राक्षस से तो पैसे माँग लेते । राक्षस का भला करने से तुम्हें कौन-सा पुण्य मिल जायेगा ! ये तो मनुष्य के शत्रु हैं ।''

रघुनन्दन ने शान्त भाव से पत्नी को समझाते हुए कहा, - ''देखो, भानुमति ! मेरा पेशा ऐसा है कि इसे व्यापार नहीं बनाया जा सकता । दवा मैं जरूर देता हूँ, लेकिन रोगी भगवान की कृपा से ठीक होता है । और स्वस्थ हो जाने पर जो भी यथाशक्ति दे जाता है, वही हमारे लिए काफी हो जाता है । हम अधिक धन करेंगे भी क्या ?''

भानुमति को पति का यह उपदेश अच्छा नहीं लगा । उसने निश्चय किया कि वह दूसरे दिन राक्षस से खुद ही निपट लेगी ।

जब दूसरे दिन राक्षस दवा खाकर जाने लगा तो भानुमति ने कहा, - ''देखिये राक्षस मामा जी ! आप की चिकित्सा पर वैद्य जी ने सौ अशर्फियाँ खर्च की हैं । कल आप कृपया खाली हाथ न आयें ।''

यह सुन कर राक्षस आग बबूला हो गया । वह गरजता हुआ बोला, - ''तुमने मुझसे पैसे माँगने का साहस कैसे किया? और मुझे मामा कह कर क्यों पुकारा? ऐसी ग़लती फिर न करना । अरण्य में जो भी मनुष्य मुझसे टकराता है, पहले मैं यह देख लेता हूँ कि उसके पास कितना धन है । फिर मैं उसे आहार बना लेता हूँ ।''

राक्षस की बातों से भानुमति डर गई । लेकिन इतना उसने ताड़ लिया कि उसके पास धन बहुत होगा । उसने सोचा कि यदि उसके घर का पता उसे चल जाये तो भारी मात्रा में सोना और आभूषण मिल सकता है ।

इस पर उसने काफी सोच-विचार कर राक्षस

का धन प्राप्त करने की एक योजना बनाई ।

एक दिन शाम को वह अपने पति से यह कह कर बाहर चली गयी कि वह मायके जा रही है । बाहर जाकर वह गाँव के किनारे के एक खंडहर में छिप गई । जब राक्षस आधी रात को वैद्य से दिखा कर वापस जाने लगा तो वह भी छिप कर उसके पीछे-पीछे उसकी गुफा तक गयी । राक्षस की गुफा देख लेने के बाद वह शेष रात और अगला दिन गुफा के आस-पास ही छिप कर घूमती रही । उसके सिर पर मानों धन-पिशाच सवार हो गया था और धन के लालच में वह भूख, प्यास, नींद और भय सब कुछ भूल गयी थी ।

जब दूसरे दिन आधी रात को राक्षस वैद्य के पास चला गया तो वह छिपती हुई उसकी गुफा के अन्दर गयी । गुफा के एक कोने में उसे चमड़े के दो बड़े-बड़े थैले दिखाई पड़े । उन थैलों में स्वर्ण - आभूषण और अशर्फियाँ भरी पड़ी थीं । उन्हें देखकर वह खुशी से पागल हो उठी ।

उसने दोनों थैलों को कन्धे पर डाल लिया और राक्षस की नज़र से बचते हुए भोर तक घर पहुँच गयी । उसने उन थैलों को अपने घर के पिछवाड़े में छिपा दिया । तब तक रघुनन्दन जाग चुका था और शौचादि के बाद स्नान कर रहा था । भानुमति ने अपनी यह सारी योजना अपने पति से भी गुप्त रखी थी । उसे अपनी योजना की सफलता पर और अपार आभूषण और स्वर्ण पाकर बहुत आनन्द आ रहा था ।

तभी अचानक उसे पाँव और शरीर में दर्द होने लगा । शायद दिन भर भूखा-प्यासा रहने तथा दो भारी थैलों को ढोकर लाने से शरीर में दर्द हो गया है, यह सोच कर वह आराम करने के लिए पलंग पर लेट गई । धीरे-धीरे उसका दर्द और बढ़ गया और वह कराहने लगी ।

जब रघुनन्दन ने पत्नी के कराहने की आवाज सुनी तो उसने नाड़ी की जाँच कर कुछ गोलियाँ खाने को दीं ।

उस दिन आधी रात को जब राक्षस दवा लेने के लिए आया तो वह बहुत प्रसन्न होकर बोला, - "वैद्य, तुम्हारी दवा रामबाण है । मैं अब रोग से मुक्त होकर पूर्णतः स्वस्थ हो गया हूँ । मैं तुम्हें इनाम में कुछ स्वर्ण और आभूषण देना चाहता था, लेकिन मेरा सारा धन किसी ने लूट लिया है । इससे पता चलता है मेरी गुफा का पता किसी को मालूम हो गया है । इसलिए अब मैं अन्यत्र जा रहा हूँ । मैं सदा तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा । अब मुझे दवा की आवश्यकता नहीं है ।"

राक्षस जैसे ही गया कि भानुमति बहुत जोर-जोर से कराहने लगी । और रो-रोकर कहने लगी, - "बहुत प्यास लग रही है । हाथ, पाँव और पूरा बदन टूट रहा है । तलवों में जलन हो रही है ।

जल्दी कुछ दवा दीजिये ।''

रघुनन्दन दौड़ता हुआ उसके कमरे में गया और उसकी नाड़ी की जाँच की । पूरी तरह जाँच करने के बाद उसने आश्चर्य करते हुए कहा, - ''तुममें तो राक्षस के रोग के सभी लक्षण आ रहे हैं । भला यह कैसे संभव हो सकता है? अविश्वसनीय होते हुए भी रोग के सारे लक्षण यही बताते हैं। आश्चर्य है !''

पति की बातें सुन कर भानुमति का चेहरा पीला पड़ गया । उसे लगा कि राक्षस का पाप का धन लाने से ही ऐसा हो गया है । राक्षस ने तो मानवों को मार या सता कर धन एकत्र किया होगा । उस पाप की कमाई उसके घर में आने से ही उसकी यह अवस्था हो गयी है । वह मन ही मन पछताने लगी कि व्यर्थ ही उसने धन के लालच में यह पाप कर डाला । उसने अपने पति से आभूषण और अशर्फियों के थैलों के बारे में सब कुछ बता दिया और रो - रोकर क्षमा माँगने लगी । फिर कहा, - ''राक्षस के पाप के धन से भरे उन थैलों को गाँव के बाहर के अन्धे कुएँ में डलवा दें । जब तक वह धन मेरे घर में रहेगा, मुझे चैन नहीं लेने देगा ।''

रघुनन्दन उन थैलों में रखे धन को देख कर चकित रह गया । फिर उसने भानुमति से कहा, - ''धन न पवित्र और न अपवित्र होता है । यह तो भगवान की संसार में क्रियाशील एक शक्ति है । लेकिन इसका उपयोग अवश्य पवित्र और अपवित्र हो सकता है । कुएँ में फेंकना भी इसका दुरुपयोग है । क्यों न इसे ग्रामाधिकारी को दे दें जिससे इस धन का उपयोग पूरे ग्राम और समुदाय के कल्याण के लिए हो सके । धन का इससे और अधिक पवित्र उपयोग भला क्या हो सकता है?''

भानुमति पति से सहमत होती हुई बोली, - ''आप का निर्णय लोक-मंगलकारी है । लोक-मंगल में ही हमारा भी मंगल है । आप सचमुच धन्य हैं। मुझ पर धन-पिशाच सवार था । इसीलिए दुर्बुद्धि आ गयी थी । अब मेरी आँखें खुल गयी हैं और मैं समझ गयी हूँ कि कमाई के धन में, चाहे वह कितना ही थोड़ा हो, जो सन्तोष और सुख है, वह लालच और पाप के धन में नहीं ।''

''तुम तो राक्षस-रोग की एक खुराक दवा से ही ठीक हो जाओगी और सुबह तक काम-काज करने लग जाओगी ।'' वैद्य ने पत्नी को दवा की एक खुराक देते हुए कहा ।
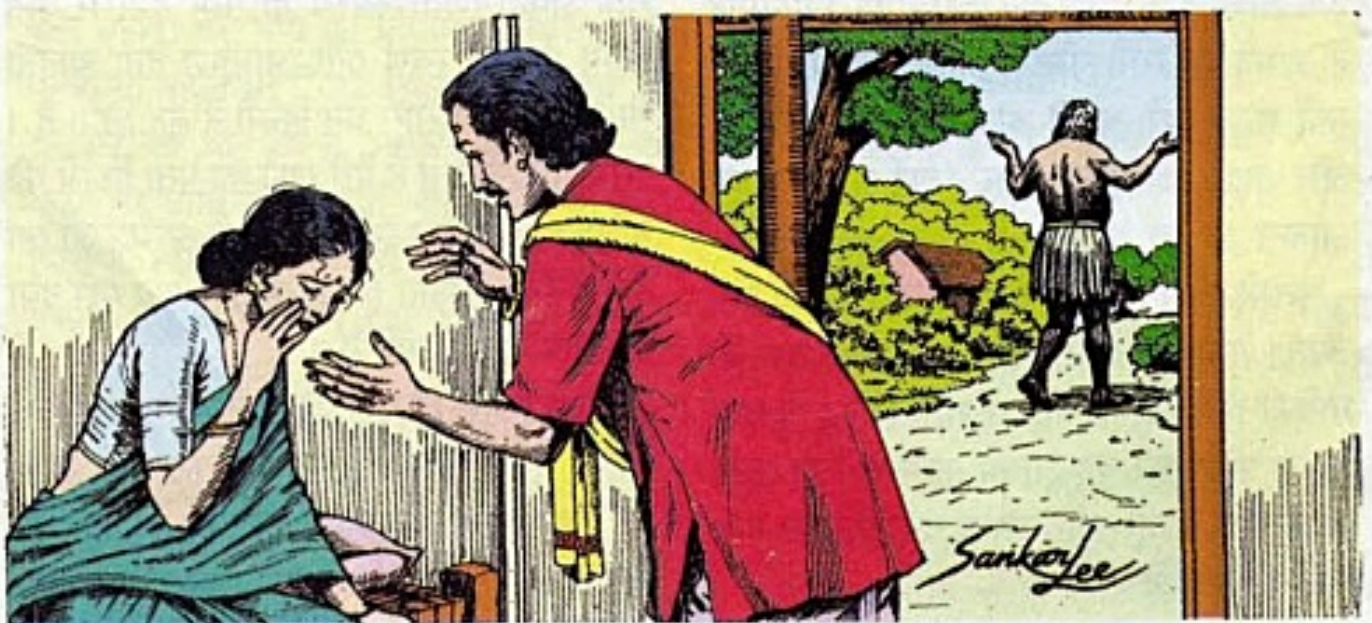
स्वर्ण-सिंहासन

7

(**अब तक** : एक ओर चम्पक के राजा मरालभूपति कालिन्दी और कुन्द के राजाओं को अपने साथ मिला कर कौंडिन्य पर आक्रमण करने जा रहे हैं, दूसरी ओर कौंडिन्य के राजकुमार विजयदत्त का राज्याभिषेक हो रहा है । कालिन्दी के राजा माधव सेन ने निर्णय किया कि युद्ध के मैदान में जाकर वह कौंडिन्य के पक्ष में लड़ेगा । यह उसने अभी मरालभूपति को नहीं बताया। विजयदत्त स्वर्ण-सिंहासन की प्रथम सालभंजिका के प्रश्नों के उत्तर देकर पहली सीढ़ी पर आ चुका है । अब वह दूसरी साल भंजिका की कहानी सुन रहा है जिसमें सुवर्णगिरि के राजा की पड़ोसी राजा धोखे से हत्या कर उसका राज्य हड़प लेता है।)

- तदोपरान्त)

एक बार सुवर्णगिरि राज्य में कुशध्वज नाम का राजा राज्य करता था। वह मंत्रियों के परामर्श और सहयोग से बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य का शासन-प्रबन्ध चलाता था। उसके शासन-काल में प्रजा सब प्रकार से सुखी और प्रसन्न थी।

राजा का एक पुत्र था-मलयध्वज । वह असाधारण प्रतिभा का बालक था। महानता के लक्षण उसके बाल्यकाल से ही दिखाई पड़ने लगे थे। इसलिए मंत्रियों ने उसे शिक्षा के लिए उस समय के प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ गुरु कृष्ण चन्द्र के पास भेजने की सलाह दी। राजा उनसे सहमत होकर राजकुमार को कृष्ण चन्द्र के आश्रम में छोड़ने के लिए स्वयं गये।

अपनी कुशाग्र बुद्धि और असाधारण प्रतिभा के कारण मलयध्वज शीघ्र ही अपने गुरु का कृपा पात्र बन गया। उसमें एक कुशल और समर्थ शासक के सभी गुण सहज रूप से विद्यमान थे। जब वह अपनी शिक्षा पूरी करके अपने राज्य में वापस आने की तैयारी कर रहा था, तभी उसे बहुत दुखद समाचार मिला। सुवर्णगिरि के पड़ोसी राजा वज्रकीर्त्ति ने

लक्ष्मी गायत्री

छलपूर्वक आक्रमण कर रात्रि में महल में घुस कर राजा और रानी की निद्रावस्था में हत्या कर दी थी और महल पर अधिकार कर लिया था।

इस समाचार से राजकुमार मलयध्वज और उसके गुरु के हृदय पर मानों वज्राधात हो गया। गुरु कृष्णचन्द्र ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, - "मैं तुम्हारे ऊपर इस समय अचानक और असमय आये हुए संकट को स्वयं भी अनुभव कर रहा हूँ, परन्तु जितना शीघ्र हो सके तुम्हें वर्तमान से निकल कर सतर्क रहते हुए गंभीरतापूर्वक भविष्य की चिंता करनी चाहिए। तुम्हारे प्राण पर भी संकट आ सकता है। इसलिए मेरा परामर्श यह है कि तुम कुछ दिन और यहीं ठहर जाओ।"

मलयध्वज ने दुख भरे आक्रोश के साथ कहा, - "गुरुदेव, मैं समझता हूँ कि जिस व्याघ्र ने मानव रक्त का स्वाद एक बार चख लिया हो, तो दूसरे शिकार की टोह में तो होगा ही। भयभीत होकर छिपने से तत्काल विपत्ति तो टल जायेगी पर भय बराबर बना रहेगा। इसके विपरीत यदि हम व्याघ्र पर आक्रमण कर उसे समाप्त कर दें तो निर्भय और निश्चिन्त हो सकते हैं।"

"इसका दूसरा पक्ष भी उतनी ही प्रबल मालूम होता है, गुरुदेव! पिताश्री और माताश्री की रात्रि में शयनकक्ष में हुई हत्या का साफ अर्थ है हमारे ही राज्य के किसी विश्वासघाती द्वारा षड्यंत्र। अभी प्रजा की सहानुभूति हमारे साथ होगी। लेकिन कुछ दिनों तक यदि उन्हें मेरा संवाद नहीं मिला तो वे यही समझेंगे कि शत्रु के षड्यंत्र का मैं भी शिकार हो गया हूँ और वे पुराने राजा को भूल कर बदली हुई परिस्थिति को स्वीकार कर लेंगे। इसलिए मुझे यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र राज्य में जाकर वहाँ की राजनीतिक स्थिति की जानकारी करनी चाहिये। निस्सन्देह गुप्त रूप से।"

उसकी बातों पर विचार करने के बाद गुरु कृष्णचन्द्र ने कहा, - मैं तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि, कुशाग्र बुद्धि, असाधारण जीवन और आत्म-विश्वास से परिचित हूँ। तुम जैसा उचित समझो, करो। मेरा आशीर्वाद हर दम तुम्हारे साथ रहेगा। विजयी भव।"

गुरु का आशीर्वाद लेकर मलयध्वज एक साधारण मनुष्य के वेश में अपनी चन्द्रहास तलवार के साथ घोड़े पर सवार हो निकल पड़ा।

सुवर्णगिरि की सीमा पर एक छोटा-सा

स्वतंत्र भील राज्य था। वहाँ का राजा सिंहगुप्त कुशध्वज का आप्त मित्र था। मलध्वज सन्ध्या होते-होते उस राज्य की राजधानी में पहुँच कर सिंहगुप्त से मिला।

सिंहगुप्त मलयध्वज से मिल कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, - "अच्छा हुआ, तुम आ गये। मित्र कुशध्वज का दुःखद समाचार मिलने के बाद मैं तुमसे स्वयं सम्पर्क करने का प्रयास कर रहा था। तुम्हारी सहायता के लिए मेरी सेना तैयार है। युद्ध में मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगा और जब तक दुष्ट वज्रकीर्ति को मार कर तुम्हें अपनी राज्य सुवर्णगिरि लौटाने के साथ-साथ उसका राज्य भी न दिला हूँ, मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।"

"लेकिन महाराज! शत्रु के पास अब दो राज्यों की सेना होगी। क्या हमारी मुट्ठी भर सेना उनका सामना कर सकेगी? हम आप के स्नेह और सहायता के लिए कृतज्ञ हैं, लेकिन मेरा विश्वास है कि सेना की सहायता से विजय संभव नहीं है। हमारे पिताश्री को शत्रु ने जिस प्रकार छल-कपट से मारा है, मैं भी उन्हें वैसे ही मारना चाहता हूँ। मुझे यह भी सन्देह कि इस षड्यंत्र में हमारी ही सेना का कोई उच्चाधिकारी शामिल है। हमें उसकी भी जानकारी करनी है और उसे दण्ड देना है। यह सब कूटनीति से ही संभव है। इसलिए सेना के स्थान पर मुझे आप अपनी सेना का केवल एक कुशल योद्धा, कुछ धन, कुछ स्वर्ण-आभूषण और कुछ विष-पूरित सूइयों का प्रबन्ध कर दीजिये।" मलय ध्वज ने अपनी योजना और रणनीति बताते हुए कहा।

सिंहगुप्त ने उसकी बुद्धि और आत्म-विश्वास

पर मुग्ध होकर कहा, - "तुम्हारी योजना तो ठीक लगती है, लेकिन क्या इतना ही काफी रहेगा?"

"हाँ महाराज! यदि भाग्य ने साथ दिया तो इतना ही पर्याप्त है।" मलयध्वज ने आत्म-विश्वास के साथ कहा।

"तो ठीक है । सवेरे ये सारी चीजें मिल जायेंगी। अभी भोजन कर विश्राम करो।" सिंहगुप्त ने कहा।

दूसरे दिन सवेरे सिंहगुप्त ने मुस्कुराकर एक सुन्दर और बलिष्ठ योद्धा सैनिक को मलय ध्वज से मिलाते हुए कहा, - "इस युवक का कहना है कि औपचारिक परिचय कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसका दवा है कि तुम इसकी शक्ति और सामर्थ्य के बारे में अपने आप जान जाओगे।"

मलयध्वज समझ गया कि सिंहगुप्त उसकी बुद्धि की परीक्षा ले रहा है। इसलिए उसने भी मुस्कुराते हुए कहा, - "यदि युवरानी शालिनी के समान कुशाग्र बुद्धि युक्त बीरांगना मेरे साथ हों तो विजय निश्चित है। मेरा विश्वास है कि मेरी आशाएँ अवश्य फलीभूत होंगी।"

मलयध्वज की बातें सुन कर लज्जा से शालिनी की नजरें झुक गईं.

सिंहगुप्त ने आश्चर्य के साथ पूछा, - "मलय ध्वज! तुम्हें कैसे ज्ञात हो गया कि सैनिक वेशधारी एक स्त्री है, और वह भी मेरी पुत्री शालिनी । तुमने इसके पहले शालिनी को कभी देखा भी नहीं। मैं तुम्हारी बुद्धि की जाँच कर रहा था और तुम इसमें खरे निकले । अब मुझे पक्का विश्वास हो गया कि तुम अपने उद्देश्य की प्राप्ति में अवश्य सफल होंगे।"

"मुझे मालूम था कि युद्ध विद्या में इतनी कुशल अपनी बेटी के होते हुए मेरी सहायता के लिए किसी और को नहीं भेजेंगे। इसीलिए मैं आसानी से राजकुमारी को पहचान गया।" मलयध्वज ने कहा।

यद्यपि इस उत्तर से सिंहगुप्त सन्तुष्ट नहीं था फिर भी उसने सही कारण जानने की ज़िद नहीं की और सभी आवश्यक वस्तुएँ देकर आशीर्वाद के साथ उन दोनों को बिदा किया ।

दोनों कुशल अश्वारोही थे। जैसे दोनों सैनिकों ने सिंहगुप्त से आशीर्वाद लेकर अपने अश्वों को एड़ी लगाई कि उनके घोड़े हवा से बातें करने लगे।

सूर्यास्त होने से पूर्व वे सुवर्णगिरि की राजधानी के एक निकटवर्ती वन में पहुँचे और वहाँ थोड़ा विश्राम किया। तभी शालिनी ने पूछा, - "सुवह मुझे पहचानने का आपने जो कारण बताया था, वह सच नहीं था। क्या आप सच्चा कारण बतायेंगे कि पुरुषवेश में होते हुए भी मुझे कैसे पहचान किया?

"कोई भी स्त्री चाहे वह किसी वेश में हो, सामान्य परिस्थिति में अपनी सुकुमारता, लज्जाशीलता और आँखों की चंचलता नहीं छिपा सकती। विषम परिस्थिति में भले वह छिपा ले। इसलिए मुझे आप को पहचानने में कठिनाई नहीं हुई।" मलयध्वज ने मुस्कुराते हुए कहा।

वे पुनः घोड़ों पर सवार होकर चल पड़े ।

अन्धेरा होते-होते वे दोनों राजधानी के सीमान्त पर पहुँच गये । नगर से कुछ दूर पहले ही एक घने वृक्ष के पास वे रुके और घोड़ों को उसी वृक्ष से बाँध दिया। एक पहर रात तक

उसी वृक्ष के नीचे वे बैठ कर नगर की ओर जाने वालों और उधर से आने वालों पर नजर रखते रहे। फिर वे दोनों पैदल ही नगर में प्रवेश कर जन-साधारण के निवास-स्थलों की तंग बीथियों से गुजारने लगे ।

तब तक रात का दूसरा पहर चल रहा था। चारों ओर सन्नाटा छा चुका था । लोग घरों के दरवाजे बन्द कर सोने की तैयारी में थे। मलयध्वज और शालिनी अन्धेरी गली में दबे पाँव सावधानी से आगे बढ़ चले जा रहे थे ।

तभी एक घर के अन्दर से एक मद्धिम रोशनी आती दिखाई पड़ी । उन दोनों ने उस घर के निकट जाकर दीवार की खिड़की से देखा कि पति पत्नी कुछ बातें कर रहे हैं।

स्त्री पूछ रही थी कि क्या ये दुष्ट लोग युवराज की भी हत्या कर देंगे। पुरुष ने कहा, - "पड़ोसी राजा वज्रकीर्ति सत्ता के लालच में अन्धा हो रहा है। वह अन्यायी और पापी है। उसे धर्म-अधर्म का विचार नहीं है। जैसे उसने छल-कपट से हमारे राजा की हत्या की है, वैसे ही उसे राज्य की प्राप्ति के लिए युवराज को भी मार देने में कोई संकोच नहीं होगा । यह तो अच्छा हुआ कि अभी युवराज गुरु के आश्रम में हैं । लेकिन क्या पता, शत्रु कहीं अपना जाल वहाँ तक .... ।"

"हे प्रभु ! युवराज की रक्षा करना ।" हाथ जोड़ती हुई स्त्री बोली ।

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर पुरुष ने कहा, - "लेकिन असली दोषी तो दुष्ट सेनापति कन्दर्प है। घर का भेदिया लंका डाहे । घर का शत्रु बाहरी शत्रु से अधिक खतरनाक होता है। हमारे राजा का रक्षक ही भक्षक बन गया । ऐसे पापियों की

सजा तो उनका अंग-अंग काट कर गिद्धों को खिला देने से भी भयंकर होनी चाहिये।"

स्त्री आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली, - "क्या हमारा सेनापति कन्दर्प ही हमारे राजा और रानी का हत्यारा है?"

"धीरे बोल । कोई सुन लेगा तो हम लोगों का भी वही हाल होगा । आधी रात हो रही है। अब सो जा ।" पुरुष ने स्त्री को सावधान करते हुए कहा।

जब बहुत देर तक किसी की आवाज नहीं आई तब मलयध्वज ने धीरे से दरवाजे पर दस्तक दिया । फिर भी कोई आवाज नहीं आई। मलयध्वज ने पुनः दरवाजा खटखटाया ।

"कौन?" पुरुष की सहमी हुई आवाज आई।

"मित्र।" मलयध्वज ने धीमी आवाज में कहा।

थोड़ी देर में दरवाजा खुला । दरवाजा खुलते ही दोनों अन्दर चले गये और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

घर का मालिक सुकेतु और उसकी पत्नी आधी रात को अपने घर में दो अनजान युवकों को देख कर सहम गये ।

जब मलयध्वज ने अपना परिचय दिया तब सुकेतु की खुशी का ठिकाना न रहा। स्वयं राजकुमार को अपने घर में देख कर मानों वह धन्य हो गया हो ।

मलयध्वज ने सुकेतु को विश्वास में लेकर और उससे कुछ और जानकारी प्राप्त कर आक्रामक राजा और कन्दर्प से निपटने के लिए उसे अपनी रणनीति बताई । सुकेतु राजकुमार की सहायता करने के लिए हर तरह से तैयार हो गया। उसने कहा, - "आप हमारे राजा हैं । जो कुछ हुआ उसका सारी प्रजा को दुख है । यह इतना गुप्त रूप से हुआ कि प्रजा को भनक तक नहीं मिली । प्रजा दुखी और क्षुब्ध है । कुछ लोगों को छोड़कर जो कन्दर्प के साथ और बाकि हैं प्रजा आप के साथ है । आप के आदेश पर हम सब कुछ करने को तैयार हैं ।"

"हमें खुल कर कुछ नहीं करना है। इसमें प्रजा और हम दोनों तबाह हो जायेंगे । इसलिए जैसे मैं कहता हूँ, गुप्त रूप से उसे करते जाओ । भगवान की कृपा से सत्य की जीत होगी।" मलय ध्वज ने सुकेतु को समझाते हुए कहा।

दूसरे दिन सवेरे राजकुमार के आदेश पर सुकेतु वज्रकीर्ति के शयनागार के पहरेदार गुरु को अपने घर पर बुला लाया । मलय ध्वज ने उसे अपना परिचय देकर अपने काम में उससे सहायता माँगी। गुरु यह सुनते ही भय से काँपने लगा। तब मलय ध्वज ने अपने अंगरखे में से एक कीमती हार निकाल कर दिखाते हुए कहा, - "तुम्हारे काम का यह इनाम है। काम हो जाने पर इससे दस गुना मिलगा। घबराओं नहीं । तुम सत्य और न्याय का साथ दे रहे हो, पाप का नहीं । इस धर्म के काम से जो पुण्य मिलेगा, वह अलग ।"

गुरु ने हार लेने से इनकार करते हुए कहा, - "आप हमारे असली राजा हैं । आप की सहायता करना मेरा धर्म है। इसके लिए धन की आवश्यकता नहीं है । आप हमारे राजा बने रहें, हम यहीं चाहते हैं । आप आज रात के दूसरे पहर के बाद आ जाइये।" इतना कह कर गुरु राजकुमार के चरण-स्पर्श कर चला गया ।

वज्रकीर्ति के पहरेदार के चले जाने के बाद सुकेतु से मलयध्वज ने कन्दर्प के शयनागार के पहरेदार वीर को बुलवाया । युवराज का परिचय सुनते ही वीर का चेहरा पीला पड़ गया और भय तथा घबराहट से वह काँपने लगा । फिर उसने युवराज के आगमन पर प्रसन्न होते हुए उसे हर संभव सहायता देने का वचन दिया ।

मलयध्वज ने तुरन्त अपने पहनावे से एक सूई निकालकर वीर के हाथ में चुभो दी । वह दर्द से चीखने और छटपटाने लगा । मलयध्वज ने उसके मुख पर पट्टी बाँध दी और शालिनी ने सुकेतु की सहायता से उसके हाथ-पाँव भी बाँध दिये ।

मलयध्वज ने तत्पश्चात सुकेतु को भेज कर उसकी पत्नी और बच्चे को भी वहाँ बुलवाया और उन्हें बेहोशी की सूई दे दी । वे अचेत हो गये । फिर वीर के पास आकर उसने कहा, - "तुम्हारे मन की कुटिल भावना को ताड़ कर मैंने तुम्हारे शरीर में बिच्छू का विष डाल दिया है । तेरी पत्नी और बच्चा बेहोश हैं । यदि तुम मेरा साथ दो तो तुम और तुम्हारा परिवार सुरक्षित है । यदि मेरा साथ नहीं दिया तो तुम में से कोई जीवित नहीं रहेगा ।"

वीर मलयध्वज की बातें सुन कर सन्न रह गया । पत्नी और बच्चे की जान खतरे में देख कर उसने हाथ जोड़ कर संकेत से कहा, - "आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा ।"

जब मलयध्वज को पूरा विश्वास हो गया कि अब वह कपट नहीं करेगा तो उसे एक दवा पिला कर कहा, - "इससे तुम्हारे शरीर का विष उतर जायेगा ! जैसे मैंने कहा है, ठीक वैसे आज रात को ही तुम्हें यह काम करना है । कल प्रातःकाल तुम्हारी पत्नी बच्चे के साथ सही-सलामत यहीं मिल जायेगी । जरा भी छल-कपट किया तो उन्हें मृतावस्था में पाओगे ।"

एक महान सभ्यता की झाँकियाँ :
युग-युग में सत्य के लिए इसकी गौरवमयी खोज

5. सभ्यता के साथ एक बृहत् अरण्य

''भारतीय स्थानों के पुराने नामों की सूची जो आपने दी वह चित्ताकर्षक थी । यह पुराने जमाने के बहुत से आश्चर्यजनक लोगों की याद को ताजा बना देती है ।'' शाम को नदी किनारे देवनाथ और संदीप के साथ टहलते हुए चमेली ने कहा ।

''इन नामों से न केवल महान व्यक्तियों के बारे में बल्कि महान कार्यों के बारे में भी ज्ञान मिलता है। मैं ठीक कह रहा हूँ न ग्रैंड पा?'' संदीप ने कहा।

प्रोफेसर सीमेंट की एक बेंच पर बैठ गये और नदी के पार कोसों दूर पहाड़ियों और बृक्षों की एक धूमिल रेखा के पीछे अस्ताचल को जाते हुए सूरज को एक टक देखने लगे ।

''ठीक है मेरे बचे, लेकिन हमारा अतीत इतना विराट और जटिल है कि स्थानों के नाम हमेशा महान व्यक्तियों और महान कार्यों का स्मरण नहीं दिलाते। सुदूर अतीत के पुरुषों और नारियों की मनोदशा और मनोवृति को पढ़ पाना हमारे लिए कठिन है । मुझे इतना मालूम है कि ऋषियों ने करुणावश ऐसे व्यक्तियों के ऊपर भी कुछ स्थानों के नाम रखे जो न कुलीन थे न वीर, किन्तु उनके आस-पास कुछ असामान्य-सा घटित हो गया । ऋषियों को भय था कि यदि केन्द्रीय व्यक्ति के नाम को दीर्घ जीवन नहीं प्रदान किया गया तो भावी पीढ़ियाँ असामान्य घटना को भूल जायेंगी ।'' ग्रैंड पा ने कहा ।

''क्या हुआ यदि घटना विस्मृति के गर्भ में समा गई? क्या घटना के लिए अपात्र नाम को अमरत्व प्रदान करना आवश्यक है?'' संदीप ने दृढ़ता से अपना विचार प्रस्तुत किया।

''हाँ मेरे बचे, ऐसी अवस्थाओं में घटना इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है कि उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता, भले ही उसे स्मृति में बनाये रखने के लिए किसी अयोग्य व्यक्ति को भी याद रखना पड़ जाये । यदि कृष्ण को याद रखना है तो कंस को भी याद रखना पड़ेगा । वास्तव में, तथाकथित अयोग्य व्यक्ति को उस सन्देश से अलग नहीं किया जा सकता जो उसके नाम से जुड़े हुए आख्यान से हमें मिलता है ।'' ग्रैंड पा ने अपना विचार दिया ।

''उदाहरण के तौर पर जैसे ....?'' अपने भाई की
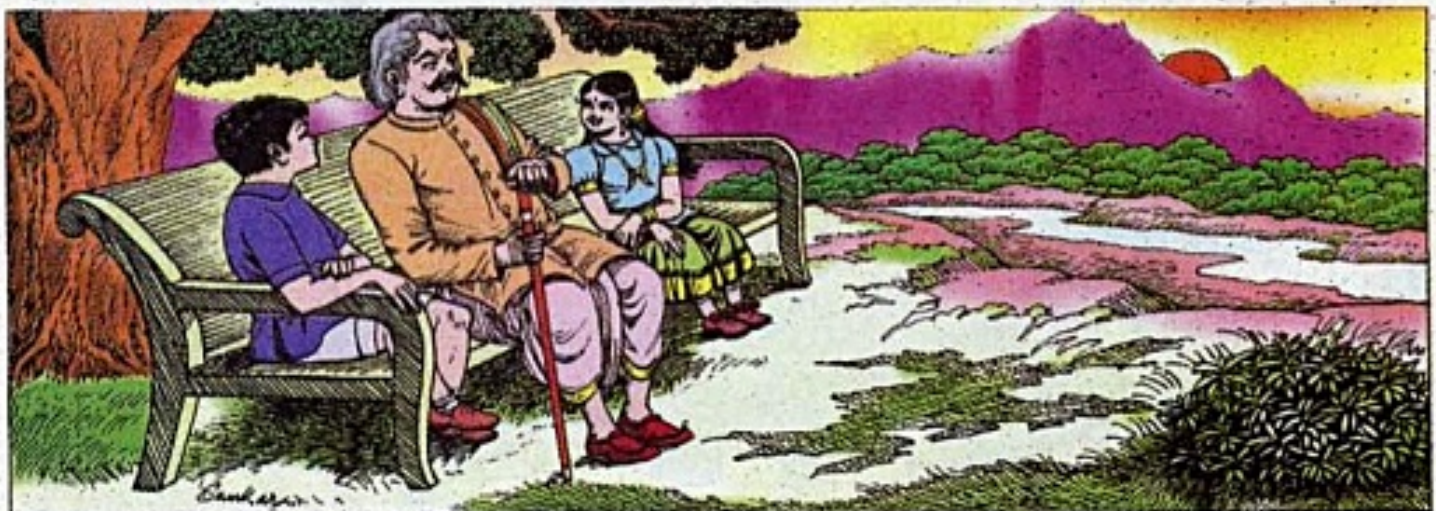
की गाथा

ओर देख कर मुस्कुराती हुई किन्तु ग्रैंड पा से मुँह छिपाती हुई चमेली बोली । अपनी मुस्कुराहट से वह संदीप को यह बताना चाहती थी कि उसने ग्रैंड पा को कोई आख्यान सुनाने के लिए घेर लिया है ।

"उदाहरण के लिए दण्डकारण्य । इसके कारण एक ऐसे युवा राजा का नाम अमर हो गया जो किसी मानदण्ड पर भी योग्य व्यक्ति नहीं कहा जा सकता ।"

"दण्डकारण्य ग्रैंड पा? मैंने रामायण की कथा में इसके विषय में पढ़ा है । क्या यह काल्पनिक जंगल नहीं है?" चमेली ने जिज्ञासा के साथ प्रश्न किया ।

"तुम्हें कैसे सन्देह हुआ कि यह काल्पनिक है ? दण्डकारण्य विश्व भर में जंगलों की शान है । यह केवल अति प्राचीन ही नहीं बल्कि एक ऐसा अरण्य है जहाँ एक महान सभ्यता बिकसित हुई । दण्डकारण्य के समान विश्व भर में कोई अन्य बन नहीं है ।"

"किन्तु यह तो पौराणिक काल की बात है । क्या आप का तात्पर्य यह है कि यह अरण्य अभी भी मौजूद है?" चमेली ने अत्यधिक कुतूहल और उत्सुकता से पूछा ।

"भारत में, जहाँ प्रतिवर्ष 25350 हेक्टेयर बन नष्ट किया जाता है, क्या ऐसा प्रश्न पूछना आश्चर्य जनक नहीं लगता । हमारे जंगल भयभीत कर देनेवाली गति से सिकुड़ते चले जा रहे हैं । हाँ बेटी चमेली, दण्डकारण्य रामायण की अनेक घटनाओं का मंच रहा है । इसी बन में विधवा राक्षसी सूर्पनखा ने राम से विवाह का प्रस्ताव रखा था और जिसे लक्ष्मण ने खदेड़ दिया था । यहीं पर ऋषि-मुनियों के यज्ञ में विघ्न डालने वाले अनेक राक्षसों से राम ने युद्ध किया । इसी बन से रावण ने सीता का हरण किया था । इसी अरण्य में रावण से युद्ध करते हुए पक्षी जटायु स्वर्ग सिधार गये थे । इत्यादि, इत्यादि । लेकिन यह विराट बन विकृत हो जाने के बावजूद आज तक विद्यमान है जो उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों में फैला हुआ है ।"

"ग्रैंड पा, इसके नाम के पीछे जो कथा आप कहनेवाले थे, उसका क्या हुआ?" संदीप ने अधीर होकर कहा ।

देवनाथ ने कहानी प्रारम्भ की :

यह बहुत प्राचीन काल की बात है । एक बार दण्डक वंश के राजाओं का एक बड़े भूभाग पर शासन था । उस वंश का एक राजा, जिसका नाम भी दण्डक था, हमेशा आमोद-प्रमोद चाहनेवाला एक बिलासप्रिय युवा था ।

एक दिन घोड़े पर सवार हो जंगल से जाते हुए वह एक सरोवर के पास रुक गया । उसकी आँखें जल से निकलती हुई एक सुन्दरी पर टिकी थीं । क्या वह परी थी? राजा दण्डक को सहसा विश्वास नहीं हुआ कि मानवों के बीच ऐसा अनुपम सौन्दर्य हो सकता है ।

युवती घुड़सवार को देखकर मुस्कुराई और एक अन्य दिशा की ओर चल पड़ी । लेकिन दण्डक घोड़े से उतर

कर उसके इतना निकट आ गया कि युवती लज्जित और व्याकुल हो गई ।

''क्या तुम मार्ग भटक गये हो अथवा क्या तुम्हें सहायता की आवश्यकता है?'' शरमाती हुई युवती बोली।

''जिधर भी मैं चल पड़ता हूँ, वही मेरा मार्ग बन जाता है, क्योंकि मैं उन सब का स्वामी हूँ । मैं इस भूभाग का राजा हूँ । जहाँ तक तुम्हारे दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है । मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ ।'' दण्डक ने कहा ।

युवती अवाक् रह गई । लेकिन शीघ्र ही अपने को सम्हालती हुई बोली, - ''देखो युवक, तुम अपने को यहाँ का राजा बताते हो, लेकिन मैं विश्वास नहीं करती । एक राजा को जानना चाहिये कि केवल दो स्थितियों में ही कोई पुरुष किसी स्त्री से विवाह कर सकता है - स्त्री उससे विवाह करना चाहे अथवा कम से कम विवाह के लिए सहमत हो या स्त्री के माता-पिता विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करें। तुमसे विवाह के लिए न तो मैं सहमत हूँ और न तुमने इसके लिए मेरे माता-पिता की अनुमति प्राप्त की है ।''

राजा असभ्य के समान ठठा कर हँसा ।

''घमण्डी छोकरी, कोई भी बाप मुझे, एक राजा को दामाद बनाने में अपना सौभाग्य समझेगा । रीति-रिवाजों को मैं मानता नहीं । आओ, मेरे साथ चलो । हम अपने मंत्रियों के साथ उपहारों से लदी गाड़ियाँ भेज कर तुम्हारे पिता को सन्तुष्ट कर देंगे।'' दंभ से बोलते हुए दण्डक ने स्त्री का हाथ पकड़ने का प्रयास किया ।

स्त्री और कोई नहीं, मुनि शुक्राचार्य की कन्या अरजा थी । निकट ही मुनि का आश्रम था, जहाँ वह सरोवर में स्नान करके वापस लौट रही थी ।

''छी छी, धिक्कार है तुम्हें, सनकी उद्दण्ड युवक !'' अरजा चीखती हुई बोली ।

''मेरे पिता एक ऋषि हैं और तुम्हारा सारा राज-पाट और खजाना भी उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकता। व्यक्ति के चरित्र के सिवा सब कुछ उनके लिए तुच्छ है ।''

अरजा ने दण्डक के हाथ से अपने को यद्यपि छुड़ा लिया, लेकिन वह उसे बलपूर्वक पुनः पकड़ने का प्रयास करने लगा । उस खूंखार जानवर से निपटने के लिए अरजा को बहुत संघर्ष करना पड़ा, जिसमें उसे काफी चोट आ गई और रक्त बहने लगा ।

''नीच, दुष्ट ! भाग यहाँ से । शीघ्र ही तुम्हें इस शैतानी की सजा मिल जायेगी ।'' अरजा रोती-बिलखती

हुई झाड़ियों में अदृश्य हो गई । वह वन की वीथियों से पूरी तरह परिचित थी । दण्डक इसीलिए बहुत प्रयास के बावजूद उसे पुनः पकड़ पाने में सफल नहीं हो सका ।

निकट ही एक नदी किनारे मुनि शुक्राचार्य का आश्रम था । मुनि ने जैसे ही ध्यान के बाद अपने नेत्र खोले कि उनकी दृष्टि रोती-बिलखती और घबरायी अरजा पर पड़ी।

"क्या बात है मेरी बच्ची?" मुनि ने पूछा ।

अरजा फूट-फूट कर रोने लगी । वह इतनी घबरा गई थी कि बहुत देर तक एक शब्द भी न बोल सकी। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि जंगली हिंसक पशुओं से भी अधिक खतरनाक जानवर मनुष्य हो सकता है और उसे ऐसी विषम परिस्थिति से गुजरना पड़ सकता है । पिता की सान्त्वना पाकर उसने उन्हें अपना सारा दुखद वृतान्त सुना दिया ।

मुनि ने ध्यान करके जान लिया कि वह असभ्य दुराचारी राजा दण्डक स्वयं था । उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि उसका पूरा राज्य इसी तरह के दुराचार का शिकार बन चुका है ।

उन्होंने यज्ञ का आयोजन कर उस राज्य के सर्वनाश के लिए प्रचण्ड शक्तियों का आह्वान किया। उन्होंने शाप दिया, - "पापी दण्डक का सारा राज्य, पवित्र आत्माओं और निर्दोष पशुओं को छोड़ कर जल कर राख हो जाये ।"

शीघ्र ही राजमहल के साथ - साथ वन के चतुर्दिक नगरों और ग्रामों को अग्नि की कोटि-कोटि लपटें निगलने लगीं । कई रात और कई दिन तक चलनेवाली इस विनाश लीला में राजा दण्डक के साथ उसका समस्त राज्य जल कर भस्म हो गया । कुछ बचे हुए निर्दोष स्त्री-पुरुष और पशु शरण लेने अन्यत्र चले गये ।

सैकड़ों कोसों तक राख ही राख ! कैसी भयंकर विनाश-लीला रही होगी !

धीरे-धीरे कालक्रम में दृश्य बदला । अन्य वनों से बरसाती झोंकों के साथ आये उस मरुस्थल पर बीज अंकुरित होने लगे । सैकड़ों वर्षों के बाद वह सारा क्षेत्र जंगल में बदल गया । शताब्दियाँ गुजरती गईं और धीरे-धीरे यह वन न केवल तपस्वियों और ऋषि-मुनियों का शरण-स्थल बन गया, बल्कि राक्षसों और नर पिशाचों का अड्डा भी ।

जिन ऋषि-मुनियों को इस वन के उद्गम का ज्ञान था, उन्होंने उस अभागे राजा तथा वंश के नाम पर इसे दण्डक वन या दण्डकारण्य कहा, जो इसके लिए उत्तरदायी था ।

"अद्‌भुत !" चमेली और संदीप ने विस्मय प्रकट किया ।

असाधारण गधा

गुरु प्रायः अपने गृहस्थ-शिष्यों के घर पर जाया करते थे। वे पैदल जाते थे। वे वृद्ध हो गये थे और प्रायः थक जाते थे। लेकिन उन्होंने कभी शिकायत नहीं की।

एक दिन उनके एक शिष्य ने उन्हें एक खूबसूरत गधा लाकर दिया और कहा, - ''श्रीमान, अपनी यात्रा के लिए इसे स्वीकार करने की कृपा करें। रेत और कीचड़ से होकर गाँव-गाँव पैदल जाते आप को देख कर हम सब को बहुत कष्ट होता है। यह तगड़ा जानवर है और आप के बहुत काम आयेगा।

गुरु को पैदल चलने की परवाह नहीं थी, फिर भी प्रेम से दी हुई भेंट को अस्वीकार नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने गधे को स्वीकार कर लिया।

अगले दिन गुरु को अपने जमींदार के घर पर जाना था। वे गधे पर सवार हो गये और उनके शिष्यगण अगुवानी करने लगे। अनेक स्त्री-पुरुष जमीन्दार के भवन के सामने गुरु के स्वागत के लिए खड़े थे। गधे से उतरने से पहले गुरु को माला पहनाई गई। कुछ फूल गधे के ऊपर भी गिर पड़े। निश्चय ही उसने अपने ऊपर गर्व अनुभव किया होगा।

गुरु को शिष्यगण भवन के अन्दर ले गये और गधे को जमींदार की गर्दभशाला में बाँध दिया गया।

''आप महान हैं। हमें गर्व है कि हमारी जाति में से किसी को इतनी प्रतिष्ठा मिली ।'' जमींदार के गधों ने कहा।

गुरु का गधा मुस्कुराया। उसे भी अपनी

महानता का एहसास होने लगा ।

घण्टे दो घण्टे बाद गुरु बवन से बाहर निकले। तब तक जमींदार के नौकरों ने गधे को खूब खिलाया-पिलाया। गुरु अपने आश्रम को लौट आये।

जब भी गुरु गधे पर सवार हो शिष्यों के घर जाते, शिष्यगण गुरु के नीचे उतरने से पहले ही उन्हें साष्टांग प्रणाम करते। गधा समझता था कि वे सब उसी का सम्मान कर रहे हैं ।

एक बार जमींदार के घर में धार्मिक अनुष्ठान के कारण गुरु को तीन दिनों तक लगातार जाना पड़ा । गधे को वह स्थान सबसे अधिक पसन्द आया । वह वहाँ जाने के लिए बराबर उत्सुक रहता था । इस बात से नाराज और दुखी था कि अन्य स्थानों पर उसे वैसा ही सम्मान क्यों नहीं दिया जाता था ।

उस अनुष्ठान के बाद गुरु एक सप्ताह तक अपने आश्रम से बाहर कहीं नहीं गये। तब एक शिष्य से निमन्त्रण मिलने पर गुरु उसके घर जाने को तैयार हुए। गधा अपने अस्तबल से निकलते समय बहुत प्रसन्न था । गुरु गधे पर सवाह हो शिष्यों के साथ गन्तव्य की ओर जाने लगे। कुछ दूरी पर एक चौराहा था जहाँ से एक मार्ग जमीन्दार के भवन की ओर जाता था और दूसरा उस शिष्य के मकान की ओर जहाँ गुरु को जाना था। जैसे ही शिष्य ने गुरु को अपने घर की ओर ले जाना चाहा, गधा रुक गया और आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। बल्कि वह अपने प्रिय मार्ग पर चलने लगा जो जमींदार के भवन की ओर जाता था।

शिष्यों ने गधे को बलपूर्वक अपने घर की ओर जानेवाले मार्ग पर लाना चाहा। इस पर गधे को क्रोध आ गया और वह गुरु को जमीन पर गिरा कर जमींदार के भवन की ओर दौड़ने लगा।

जमींदार का भवन निकट ही था। वह बड़ी आशा लेकर भवन के बरामदे तक पहुँच गया और अन्दर के आँगन में घुसने ही वाला था कि नौकरों ने उसे डंडों से मार-मार कर बाहर भगा दिया।

गधा लंगड़ाता हुआ पुनः गली में लौट आया और बड़बड़ाने लगा - ''लगता है, उन्होंने मुझे पहचाना नहीं।''
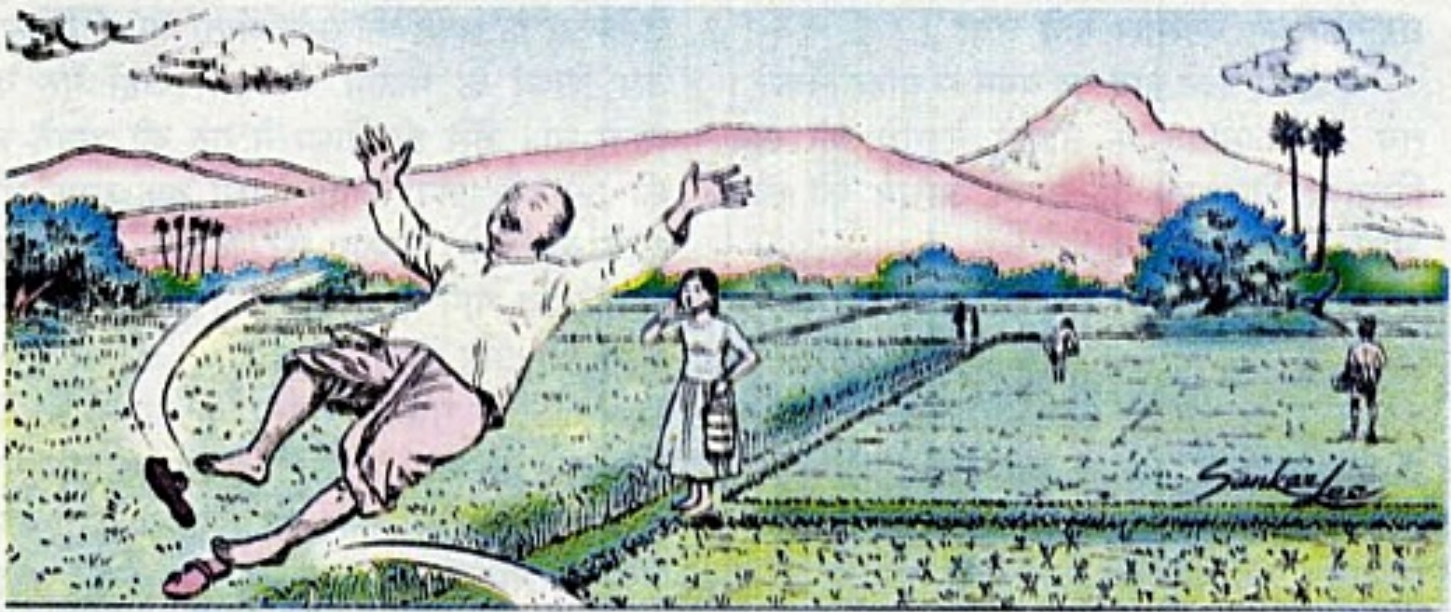
हँसने की आजादी

बापट हर रोज सवेरे अपने खेत की निगरानी करने निकल जाता और दिन भर वहीं रहता। उसके नौकर की बेटी शान्ता पीछे से उसके लिए खाना और पानी लेकर जाती और वह भी वहीं रह कर बापट को खाना खिलाती और खेत पर ही कुछ न कुछ काम करती।

बापट वृद्ध था और भारी-भरकम शरीर का था। इसलिए हर काम के लिए उसे किसी न किसी की सहायता की आवश्यकता होती थी। शांता उसे खाना परोस कर देती, पानी पिलाती और उसके सारे आदेशों का पालन करती। वह सारा काम शान्त होकर करती और कभी भी दुखी या परेशान नज़र नहीं आती थी। इसलिए बापट उसे बहुत प्यार करता था।

एक दिन बापट खाना खाने के बाद अपने खेत के किनारे के बाँध पर टहलते समय मुँह के बल गिर पड़ा। खेत की मिट्टी गीली थी। इसलिए उसका सारा शरीर कीचड़ से लथपथ हो गया। उसने अपने हाथों का सहारा लेकर उठने का प्रयास किया। किन्तु व्यर्थ। वह इतना मोटा था कि उससे उठा न गया। शांता ने भी सहारा देने का प्रयास किया, किन्तु असफल रही। तब बापट ने कराहते हुए कहा, - "देखो, आस-पास के खेतों पर यदि कोई हो तो उसे बुला लो।"

पास के अपने खेत में भूषण कुएँ से पानी डाल रहा था। शांता जब उसे बुलाने गई तो वह आने से इनकार करता हुआ बोला,-"अच्छा हुआ। कल उसने मुझे गालियाँ दी थीं; भगवान ने उसी पाप की उसे सजा दी है।"

शांता दुखी होकर जब लौट रही थी तब उसे पामर नाम का एक मजदूर मिला। शांता की बात सुनकर उसने भी बापट को उठाने से मना कर दिया और कहा,-"उस मोटू को जमीन पर ही पड़े रहने दो। उसे गरीबों के दर्द का कुछ भी अहसास नहीं है। उसे जरा पता लगने दो कि जमीन पर सोना कैसा होता है।"

शांता बहुत परेशान थी। कुछ दूर, नाग और सोम दो किसान अपने खेतों की ओर जा रहे थे।

निर्मला रानी

शांता दौड़ कर उनके पास गई और बापट को उठाने का अनुरोध किया । बापट को संकट में पड़ा सुनकर सोम ठठा कर हँसता हुआ बोला, -"बापट जैसे मोटे आदमी को कीचड़ में गिरा देख कर तो तुम्हें बहुत मजा आया होगा । तुम सचमुच किस्मतवाली हो । मेरा ऐसा भाग्य कहाँ ?"

लेकिन नाग को बापट के कष्ट पर दया आ गई । उसने किसी के दुख पर हँसने के लिए सोम को डाँटा और बापट की मदद के लिए वह तुरन्त चल पड़ा ।

बापट अब तक मिट्टी में औंधा पड़ा कराह रहा था । नाग ने उसे सहारा देकर उठाते हुए कहा, -"आप की उम्र ढलती जा रही है । अकेले इस तरह खेत पर आना ठीक नहीं है । आजकल कोई किसी का भला करना नहीं चाहता, बल्कि उल्टा दूसरों की तकलीफ़ पर लोग हँसते हैं, उनका मज़ाक बनाते हैं । शांता को बहुत परेशान देख कर ही मैं समझ गया था कि कितनी पीड़ा में आप होंगे ।"

बापट ने शांता की ओर देखा तो वह सचमुच बहुत उदास और दुखी थी, मानो वह अनाथ हो गई हो । "नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ है । घबराओ नहीं शांता ।" उसे सान्त्वना देते हुए बापट ने कहा ।

नाग ने अपनी बैलगाड़ी से बापट और शांता को घर पहुँचा दिया ।

कीचड़ से लथपथ उसका शरीर और चेहरा देखकर उसकी पत्नी घबराई हुई बोली,-"आपने यह क्या हाल बना रखा है? क्या हुआ आपको?" लेकिन बाद में उसे भी हँसी आ गई ।

"पाँव फिसलने से खेत के बाँध पर गिर गया था। मेरी यह दुःस्थिति देख कर यह बेचारी दस साल की बच्ची की जान जा रही है । और तुम खुश हो रही हो ।"

यह सुन कर शांता और बेचैन हो उठी । वह दौड़ी-दौड़ी बापट की बहू के पास गई जो पिछवाड़े

में काम कर रही थी, और पूछा,-"क्या मैं सुभद्रा से मिल कर ज़रा आ जाऊँ माँ जी!"

सुभद्रा भी दस साल की लड़की थी जो शांता की तरह ही पड़ोस के घर में काम करती थी ।

बापट की बहू ने चकित होकर पूछा,-"तुम्हारा उससे क्या काम है ?"

"उसे यह बताना है कि मालिक खेत में गिर पड़े ।"

"तो इतनी जल्दी क्या है? काम खत्म करके चले जाना । जाओ, अभी ढेर सारे काम पड़े हैं, उन्हें पूरा करो ।" बहू ने कहा ।

शांता उदास हो कर काम में लग गई । जब इसने बरतन और कपड़े साफ कर दिये तो बापट की पत्नी ने धूप में सूख रही बड़ियों की कौओं से निगरानी करने के लिए कह दिया ।

मन मार कर बेचारी आँगन में बैठ कर कौओं को हाँकती रही ।

तभी वहाँ पर किसी काम से उसका पिता भीम आ गया । भीम को देखते ही उसने प्रसन्न होकर कहा,- "सुभद्रा को देख कर अभी आई पिता जी ।"

भीम ने सोचा कि ये दोनों मालिक के खेत में गिर जाने के बारे में ही बात करेंगे, लेकिन क्या बात करेंगे, यह जानने की उत्सुकता उसके मन में थी । इसलिए वह भी पीछे-पीछे गया और दोनों की बातें सुनने लगा ।

सुभद्रा अपने मालिक के घर के पिछवाड़े में गायों को चारा खिला रही थी । शांता जैसे ही उछलती-खिलखिलाती वहाँ पहुँची, उसने काम छोड़ दिया और उस के पास आकर बोली,-"क्या कोई खास बात है शांता?"

"पहले तुम बताओ, फिर मैं तुम्हें बहुत मज़ेदार बात बताऊँगी ।" शांता हँसती हुई बोली ।

सुभद्रा ने कहा कि नहीं, मुझे तो कुछ नहीं कहना है । तुम्हीं जल्दी से बताओ न ।

"जानती हो, आज क्या हुआ सुभद्रा? आज मालिक खेत पर मुँह के बल गिर पड़े । उनके हाथ-पाँव और कपड़े कीचड़ से लतपथ हो गये । उनकी शक्ल देख कर मुझे तो हँसी आ गई ।" हँसती हुई शांता बोली ।

सुभद्रा भी खिलखिलाकर हँसती हुई बोली,- "लेकिन वे कैसे गिरे?"

"ऐसे ।" मालिक की तरह ही जमीन पर गिरती हुई बोली । और फिर दोनों हँस पड़े ।

"लेकिन ऐसे वक्त तो पर हँसना ठीक नहीं होता न । इसलिए हँसी रोक ली । हँसी रोकते ही मन में व्याकुलता आ गई । जिस-जिस ने मालिक के गिरने की खबर सुनी, सबने कुछ न कुछ कहा और उनकी हँसी उड़ाई । लेकिन हमें तो कुछ बोलने और हँसने की आजादी नहीं है न ।" उदास होकर शांता बोली। "इसलिए तुम्हारे पास आकर मन भर हँसना चाहती थी । लेकिन किसी ने आने नहीं दिया । मैं बस इसीलिए वहाँ बेचैन थी कि मैं खुल कर हँस नहीं पा रही थी ।"

"चल अब तो हँस ले ।" सुभद्रा ने कहा । फिर दोनो हँस पड़े ।

भीम ने घर जाकर पत्नी से कहा,- "हम अपने बच्चों को उनके बचपन की आजादी से वंचित कर रहे हैं । कल से शांता मालिक के घर नहीं, बल्कि स्कूल जायेगी, जहाँ उसे हँसने, खेलने और सीखने की पूरी आजादी होगी, जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है ।"

बृहदीश्वर मंदिर

नौवीं सदी में कावेरी के मुहाने पर बने डेल्टा प्रदेश का स्वर्णयुग आरंभ हुआ. अगले 400 वर्ष तक वहां चोल राजाओं ने राज किया और प्रदेश की चहुंमुखी प्रगति हुई. तंजावूर लंबे समय तक उन राजाओं की राजधानी रहा था.

चोल वंश का एक महान राजा था राजराज प्रथम जिसने 985 से 1014 ई. तक राज किया. उसने बृहदीश्वर मंदिर बनवाया, जो 'बड़ा मंदिर' भी कहलाता है. उसके निर्माण में छह बरस लगे. नाम के अनुरूप ही अति विशाल बृहदीश्वर देवालय चोल स्थापत्यकला का बेजोड़ नमूना है. पिरामिड जैसे आकार वाला उसका अष्ठकोणीय केंद्रीय विमान 64 मीटर ऊंचा है. उसकी चोटी 80 टन भारी अखंड शिला पर स्थापित है. उतना वजनी पत्थर उतने ऊपर पहुंचाया कैसे गया ? कहा जाता है कि उसे ऊपर ले जाने के लिए एक तिरछी टिकटी बांधी गयी थी. उसका एक छोर मंदिर के सबसे ऊंचे स्थान पर था और दूसरा छह किलोमीटर दूर वायलूर गांव में! दुमंजिले गर्भगृह में स्थापित मंदिर का शिवलिंग तीन मीटर से ज्यादा ऊंचा है. उसका अभिषेक करने के लिए पुजारी को निसैनी पर चढ़ना पड़ता है! गर्भगृह

कावेरी के किनारे – IX
भव्य चोल साम्राज्य

कहानी : जयंती महालिंगम
चित्रण : गौतम सेन

की भीतरी और बाहरी दीवारों पर खुदाई करके मनोहर मूर्तियां तराशी गयी हैं. भगवान शिव के विभिन्न स्वरूपों के साथ-साथ वहां शैव नयनार संतों के जीवन की झलकियां और भरतनाट्यम नृत्य की 108 मुद्राएं भी उकेरी गयी हैं. मंदिर के चारों ओर ऊंचे खंभोवाले गलियारों को सुंदर भित्तिचित्रों से सजाया गया है. शिव के वाहन नंदी अपने मंडप में अलग विराजमान हैं. नंदी की 3.6 मीटर ऊंची, 6 मीटर लंबी और लगभग 25 टन भारी प्रतिमा भी एक अखंड शिला से बनाई गयी है.

राज्य की 370 बस्तियों के लोग चंदा जमा कर के मंदिर की देखरेख का भार उठाते थे. राजराज प्रथम ने बड़े-बड़े दानियों के नाम विमान की चौकी पर खुदवाने की प्रथा चलायी थी. बृहदीश्वर मंदिर में करीब पचास ऐसे दानियों के नाम खुदे हैं जिन्होंने मूर्तियां, स्वर्ण, आभूषण अथवा जमीन का लगान दान कर दिया

तंजावूर शैली का एक चित्र

था. राजराज प्रथम और उसकी बहन कुंदवै का नाम इस सूची में सबसे ऊपर है.

मंदिर के अहाते में एक मंदिर और है : पेरिय नायकी देवी का. चोल राजाओं के बाद लगभग पचास वर्ष तक वहां राज करनेवाले पांड्य राजाओं ने उस मंदिर का निर्माण करवाया था. सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने इस प्रदेश को जीत लिया. किंतु 1377 ई. में विजयनगर शासक बुक्क के पुत्र कम्पन्न ने दिल्ली के मुसलमान सूबेदार को खदेड़ दिया. उसके बाद अगले दो सौ वर्षों तक डेल्टा क्षेत्र में नायकों का राज रहा. नायक राजा विजयनगर साम्राज्य के प्रति निष्ठा रखते थे. उन्होंने तंजावूर में एक भव्य महल का निर्माण करवाया. रघुनाथ नायक (1600–1634 ई.) साहित्य और संगीतप्रेमी शासक था. माना जाता है कि महल के पुस्तकालय में रखी ताड़पत्र पर लिखी पोथियां उसी ने जमा करवायी थीं.

तंजावूर में करीब सौ वर्षों तक मराठों का शासन भी रहा. उनके वहां पहुंचने की कहानी बड़ी अनोखी है. हुआ यह कि विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद वह इलाका बीजापुर के सुल्तान के अधीन हो गया. उसने अपने एक सामंत शाहजी को यहां की जागीर दे दी. शाहजी के बाद उसका पुत्र वेंकोजी उर्फ एकोजी जागीरदार बना. वह मराठा वीर छत्रपति शिवाजी का सौतेला भाई था. बीजापुर राज्य के कमजोर पड़ते ही एकोजी स्वतंत्र शासक बन बैठा. संयोग की बात यह कि एकोजी और शिवाजी दोनों का राज्याभिषेक एक ही वर्ष में हुआ – सन् 1674 में ! अठारहवीं सदी के अंत में अंग्रेजों ने मराठा शासक को पेंशन दे कर उसका राज्य अपने हाथ में ले लिया.

मराठा शासकों ने तंजावूर की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा को आगे बढ़ाया – खास कर तुलसाजी और उसके पुत्र सरफोजी द्वितीय ने. सरफोशी द्वितीय को डेनिश प्रोटेस्टेंट पादरी ने पढ़ाया था. बचपन से ही लिखने-पढ़ने और पुस्तकों में उसकी रुचि थी. उसने अपने महल में एक पुस्तकालय की नींव डाली और विद्वानों व पंडितों को देश भर में दुर्लभ पांडुलिपियां खरीदने अथवा उनकी प्रतिलिपियां तैयार करने के लिए भेजा था. आज सरस्वती महल पुस्तकालय में संस्कृत, तेलुगु, मराठी, उर्दू, फ़ारसी और कुछ यूरोपीय भाषाओं के 22,000 से भी अधिक मूल्यवान ग्रंथ हैं. सरफोशी की जमा की गयी वस्तुएं भी एक छोटे संग्रहालय में रखी गयी हैं. उसने महल के एक कोने में एक अठमंजिला स्तंभ, गणेश-मंदिर और बृहदीश्वर मंदिर के अहाते में एक नटराज मंडप भी बनवाया था.

पोन्नया, वडिवेलु और चिन्नय्या, तंजावूर चौकड़ी के तीन भाई

चोल राजा और मराठा शासक संगीत और नृत्यकला के प्रेमी व पारखी थे. करीब 360 संगीतकार मराठा राजाओं के दरबार में आश्रय पाते थे. कई राजा स्वयं संगीतकार थे और उन्होंने संगीत-रचनाएं भी की थीं. सबसे पहले चोल राजाओं के दरबार में करीब चार सौ देवदासियों ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर आधारित भरतनाट्यम नृत्य प्रस्तुत किया था. तब इस नृत्य को सदिरआट्टम अथवा दासिआट्टम कहा जाता था. बृहदीश्वर मंदिर में नृत्य करनेवाली देवदासियों को राजराज प्रथम के समय से मंदिर के चारों ओर की गलियों में घर दिये जाते थे.

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में सुप्रसिद्ध तंजावूर चौकड़ी ने सदिरआट्टम नृत्य को सुनिश्चित रूप दे कर शास्त्रीय नृत्य की श्रेणी में स्थान दिलाया. 'तंजावूर चौकड़ी' पोन्नय्या, चिन्नय्या, शिवानंदन् और वडिवेलु नामक चार भाइयों को कहते हैं. उन्होंने भरतनाट्यम का कायाकल्प करके उसे तंजावूर की सीमा के पार दूर-दूर तक लोकप्रिय बना दिया. कर्नाटक संगीत के विख्यात रचनाकार मुत्तुस्वामी दीक्षितर ने इन भाइयों को आरंभिक शिक्षा दी थी.

चोल राजाओं के समय तमिल संस्कृति केवल नृत्य-संगीत में ही नहीं बल्कि चित्रकला में भी चरमोत्कर्ष पर थी. तंजावूर चित्रकला की पहचान है गहरे रंगों की रेखाओं में हलके रंगों का भराव, शीशे और कम मूल्य के रत्नों की जड़ावट

महाराज सरफोजी द्वितीय

और सोने के पत्तर का उपयोग. यह आज भी बहुत लोकप्रिय है. कर्नाटक संगीत के विशेषज्ञों का मानना है कि तंजावूर में बने वाद्यों जैसे कि वीणा, मृदंगम, तम्बूरा आदि का कोई सानी नहीं है.

कर्नाटक संगीत की तीन प्रसिद्ध विभूतियों का जन्म तंजावूर से कुछ किलोमीटर दूर तिरुवरूरगांव में हुआ था. ये तीनों दिग्गज – त्यागराज, मुत्तुस्वामी दीक्षितर और श्याम शास्त्री – समकालीन भी थे. त्यागराज का स्थान इनमें सबसे ऊंचा है. उनका सारा जीवन तिरुवय्यारु गांव में बीता. गांव कावेरी और उसकी चार सहायक नदियों के संगम पर बसा है. यहां के मंदिर में स्थापित भगवान का नाम है पंचनदीश्वर, अर्थात पांच नदियों के स्वामी.. हर वर्ष अप्रैल और मई माह में उनकी मूर्ति को पालकी में बैठा कर उसकी शोभायात्रा निकाली जाती है. तिरुवय्यारु से आरंभ हो कर तिरुपाझनम्, तिरुचोत्रुत्तुरै, तिरुवेणुगुडि, तिरुकांडयूर, तिरुपून्तुरुती, तिल्लैस्थानम नाम के छः गांवों से गुजरती है. यात्रा के साथ चल रहे भक्तगण रात भर नाचते-गाते रहते हैं; और कभी नदी के सूखे तल पर रेत पर ही सो जाते हैं.

महान संत और संगीतकार त्यागराज

त्यागराज श्रीराम के परम भक्त थे. उन्होंने अपने गाने संस्कृत और अपनी मातृभाषा तेलुगु में रचे हैं. संगीत और भक्ति को पृथक न माननेवाले इस संत ने सुर, शब्द और रागों की वह गंगा प्रवाहित की जिसमें सारे भेद-भाव बह गये. उनके बड़े भाई उन्हें निकम्मा और आलसी कहते थे. त्यागराज श्रीराम की जिस मूर्ति की प्रतिदिन पूजा करते थे, वह उनके भाई ने उठा कर नदी में फेंक दी. त्यागराज पीड़ा से व्याकुल हो उठे. नदी के तीर पर जा कर उन्होंने भजन गा कर अपने आराध्य को पुकारा, ''लौट आओ, प्रभु! आ जाओ!'' और चमत्कार! मूर्ति कावेरी तल से निकल कर लहरों पर तैर उठी!

कहा जाता है कि आज भी वही मूर्ति त्यागराज की समाधि पर स्थापित है. समाधि तिरुवय्यारु में ही कावेरी के तट पर बनी है. प्रसिद्ध गायिका बेंगलूर नागरत्नम्मा ने सन 1920 में उसका जीर्णोद्धार करवाया था. प्रतिवर्ष जनवरी में हजारों कर्नाटक संगीतप्रेमी वहां एकत्र होकर उस महान संगीतकार का आरधना-उत्सव मनाते हैं. त्यागराज की मूर्ति को विधिवत् अभिषेक कराने के बाद उसकी पूजा की जाती है. देश के नामी-गिरामी गायक-वादक उनकी रची 'पंचरत्न कीर्तनों' का गायन-वादन करते हैं. उस ऋतु में कावेरी जल से भरी होती है. उसकी लहरों की कलकल ध्वनि के साथ संगीत-स्वरों का आरोह-अवरोह ऐसा समां बांधते हैं कि गायक-श्रोता सभी एक अलौकिक आनंद से विभोर हो उठते हैं!

भार्गव की चिढ़

मांधार नाम के एक गाँव में एक युवा व्यापारी था-उदय । व्यापार की प्रतिभा के साथ-साथ उसमें परिश्रम, लगन और दूरदर्शिता भी थी। उसके व्यापार में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि होने लगी। इसलिए पचीस वर्ष की आयु होते-होते वह गाँव का एक प्रमुख व्यापारी माना जाने लगा । उसके माता-पिता उसकी सफलता पर बहुत प्रसन्न थे ।

एक दिन पिता ने उदय से कहा, - "पुत्र, अब तक तुम व्यापार में व्यस्त रहने के कारण विवाह का प्रस्ताव टालते रहे । लेकिन अब तो उसमें स्थिरता आ गई है । हम भी भार्गव को यही कह कर टालते रहे, लेकिन कब तक टाल सकते हैं । कहो तो अब उसे खबर भेज कर शादी पक्की करने के लिए बुला लूँ ।"

भार्गव दूर के एक गाँव में रहता था और इनके यहाँ उसका आना-जाना था । उसकी बेटी अरुणा उदय से चार-पाँच साल छोटी थी। दोनों में कोई विशेष परिचय नहीं था फिर भी दोनों परिवारों में जान-पहचान के कारण लोग यही समझते थे कि दोनों एक दिन पति-पत्नी बनेंगे। उदय भार्गव का बहुत आदर करता था, क्योंकि वह अक्सर उदय के घर आता और उसे बचपन में कहानियाँ सुनाता । उसका स्वभाव विनोदी था, इसलिए बच्चे उसे बहुत पसन्द करते थे । वह एक किसान था और उसके पास पचास एकड़ उपजाऊ भूमि थी । वह अपने गाँव का मुखिया भी था, इसलिए सभी उसका सम्मान करते थे ।

"जैसी आप की इच्छा" कह कर उदय ने विवाह के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी । उदय की स्वीकृति मिलते ही उसके माता-पिता ने

भार्गव को यह शुभ सन्देश भेज दिया ।

लेकिन जब अरुणा को यह बात मालूम हुई तो उसने माँ से कहा कि वह उदय से विवाह नहीं करेगी । कारण पूछने पर उसने बताया कि पाँच साल पहले जब मेरे घर उदय आया था और जब मैं उसे अपना गाँव दिखा रही थी, गाँव की हर चीज़ उसे समझा रही थी तो उसने मुझे डाँट कर कह दिया कि बक-बक मत करो। "वह अच्छा नहीं है माँ ।" यह कह कर वह माँ के पास से चली गई ।

माँ हँस पड़ी, फिर उसके पास जाकर समझाया,-"यह भी कोई कारण हुआ ? अब भी तुम बच्चों की तरह रूठती हो । उसके बारे में मैं तुमसे अधिक जानती हूँ । वह बहुत नेक और होनहार लड़का है । उसके साथ शादी कर जीवन भर सुखी रहोगी ।"

माँ से उदय की तारीफ सुन कर उसे याद आया कि दो साल पहले उदय की माँ जब यहाँ आयी थी तो वह भी अपने बेटे की तारीफ का पुल बाँध रही थी । तब भी उसे उदय के डाँटने की बात याद आ गयी थी ।

भार्गव को अपनी पत्नी से जब अरुणा की यह बात मालूम हुई तो उसने हँसते हुए कहा,- "यह कोई समस्या नहीं है । शादी के पहले दो-चार दिनों के लिए उन दोनों के साथ रहने का प्रबन्ध कर देंगे तो अरुणा की गलतफहमी दूर हो जायेगी ।"

भार्गव ने फिर उदय के माता-पिता को यह सन्देश भेजा, - "यद्यपि सामाजिक परिपाटी के अनुसार विवाह के पूर्व वर-वधू एक दूसरे को देखने-समझने के लिए कन्या के घर पर मिलते हैं, लेकिन ऐसा करने पर पड़ोसी यह कह कर ताना देंगे कि दुल्हा-दुल्हिन तो कई बार मिल चुके हैं, फिर ये परिपाटी का नाटक क्यों करते हैं। इसलिए विवाह की बात अभी गुप्त रखें और उदय को अकेले ही कुछ दिनों के लिए मेरे यहाँ भेज दें, क्योंकि आप सब लोगों के साथ आने से उन्हें काना-फूसी का मौका मिल जायेगा ।"

यह समाचार मिलते ही उदय के पिता ने उसे बुला कर कहा,-"घना पुर करघे की रेशमी साड़ियों के लिए प्रसिद्ध है । शहर में इन साड़ियों

की बहुत माँग है ।वहाँ जाकर और दो-चार दिन ठहर कर उन साड़ियों के विविध प्रकारों और उनके मूल्यों का विस्तृत विवरण प्राप्त करो। इस काम में भार्गव भी तुम्हारी मदद कर देगा। वहीं ठहर भी जाना ।''

उदय ने दिन भर अपना काम करके रात का भोजन किया और अपनी घोड़ा गाड़ी से घनापुर के लिए चल पड़ा । सवेरा होते-होते गाड़ी भार्गव के घर के सामने रुकी ।

उस समय अरुणा आँगन में चौका पूर रही थी । उसकी माँ वहाँ खड़ी उसके काम की तारीफ कर रही थी ।

उदय की दृष्टि अनायास ही अरुणा पर पड़ गई । वह उसके सौन्दर्य की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ उसे निहारता रहा । अरुणा ने भी उदय को देखा । अरुणा ने जैसे ही उसे पहचाना, वह भाग कर अन्दर चली गई । उदय एक टक आंगन की ओर ही देखता रहा ।

अरुणा की माँ ने उसके निकट आकर कहा,-''अरे उदय, तुम एक टक उधर क्या देख रहे हो? यह तो वही अरुणा है जिसे तुमने पाँच साल पहले देखा था । अब तो वह काफी बड़ी हो गई है और बदल भी गई है । चलो अन्दर चलो ।''

उदय जैसे ही घर के अन्दर गया कि भार्गव नाराज होकर कुछ बड़बड़ाने लगा। वह झुंझला कर कह रहा था-''सुबह-सुबह क्यों इतना चिल्ला रही हो? अरे उदय आ गया तो क्या
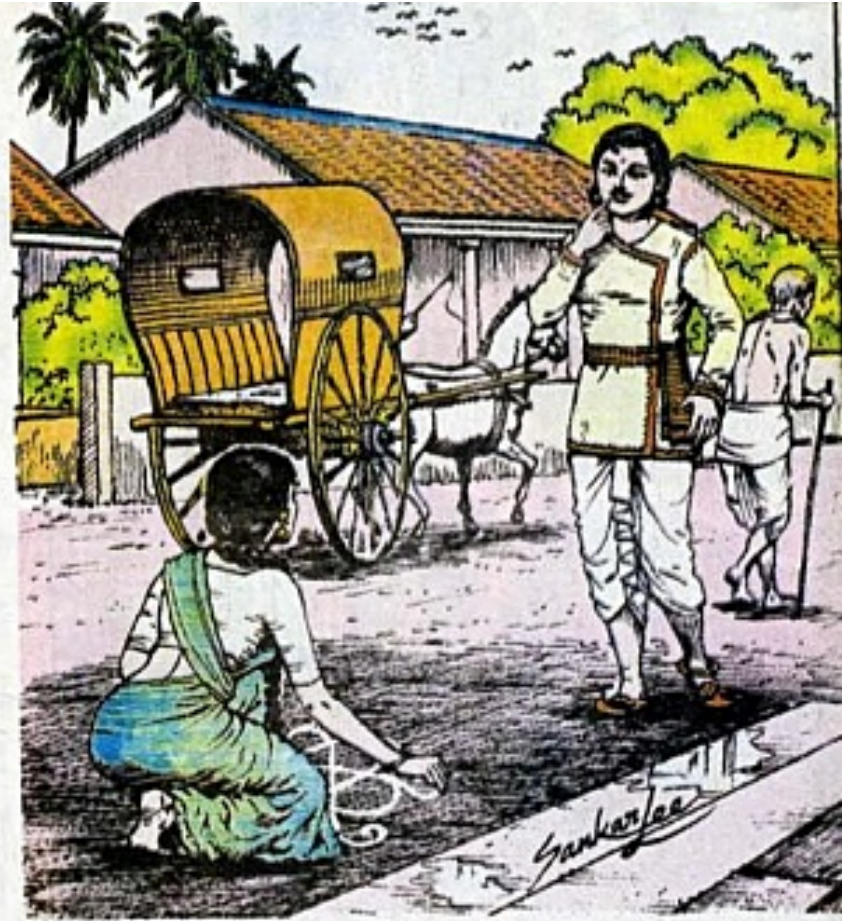
आसमान टूट कर गिर पड़ा । आया है तो दो-चार दिन ठहर कर ही तो जायेगा । इस छोटी-सी बात के लिए क्यों मेरी नींद हराम कर रहे हो?''

यह सुन कर उदय का सारा उत्साह जाता रहा । उसे लगा कि भार्गव को मेरा आना अच्छा नहीं लगा । लेकिन जब थोड़ी देर में उठ कर उसके पास आया और प्यार से कुशल-मंगल पूछा तो उसे थोड़ा सन्तोष हुआ । फिर भी मन में कहीं गलतफहमी की एक गाँठ रह गई । उसने स्वयं अपने आने का कारण बताया । भार्गव समझ गया कि उसके पिता ने उदय को वास्तविक कारण न बता कर अच्छा ही किया। भार्गव ने फिर उसे कहा कि मेरे जाने की जरूरत

नहीं पड़ेगी । अरुणा में तुम्हारी ही तरह व्यापारिक बुद्धि और चुस्ती है । वह यहाँ के सभी बुनकरों के घर और उनके करघों और कपड़ों की विशेषता की जानकारी रखती है । वह तुम्हारे साथ चली जायेगी । उसे सब पहचानते हैं । उसके साथ जाने से वे सब तुम्हें अपना ही समझ कर बात करेंगे ।

उदय के नहा-धोकर तैयार होने पर अरुणा जब उसे खाना खिला रही थी तब भार्गव ने अपने कन्धे पर रेशमी शाल रखते हुए करुणा से कहा,-"उदय को बुनकरों के घर ले जाकर इसे कुछ अच्छी रेशमी साड़ियाँ देखने में मदद कर दो । मुझे गाँव की कई समस्याएँ सुलझानी हैं । मैं कहीं जा रहा हूँ ।"

उदय के खाना खा लेने के बाद अरुणा भी तैयार होकर उसके पास आ गई । और बोली,-"अच्छा पहले यह बताओ कि तुम्हें कैसे ग्राहकों के लिए साड़ियों की जरूरत है?"

"क्या मतलब? बस, ग्राहकों के लिए साड़ियाँ चाहिए ।" उदय ने बताया ।

"यानी गरीब ग्राहकों के लिए, धनी ग्राहकों के लिए या मध्यम श्रेणी के..."

"तुम तो मुझसे अच्छा व्यापार कर सकती हो । तुम्हें तो ग्राहक की श्रेणियों का भी ज्ञान है ।" उदय ने उसकी तारीफ़ करते हुए कहा ।

यद्यपि उन दोनों की पिछली मुलाकात पाँच साल पहले हुई थी, फिर भी अरुणा के मन पर उसका प्रभाव अब भी शेष था । इसलिए वह इस बार उदय से बात करने में बहुत सावधान थी । उदय के मन में उस समय अरुणा का जो धुंधला चित्र था वह अब मिट चुका था । अब उसके मन पर एक अल्हड़, बड़बड़िया, लापरवाह लड़की के चित्र के स्थान एक सुन्दर, सुगठित, संयत, सुसंस्कृत और बुद्धिमती लड़की का चित्र उभर रहा था ।

"अच्छा, यह बताओ कि यहाँ शुद्ध रेशम की साड़ियाँ भी बनती हैं या केवल नकली रेशम की?" उदय ने जान-बूझ कर उसके साथ कुछ अधिक समय बिताने के विचार से यह प्रश्न किया ।

"पचास बुनकरों में से सिर्फ़ पाँच शुद्ध

रेशम की साड़ियाँ बनाना जानते हैं, जिनकी साड़ियाँ बड़े-बड़े शहरों और विदेशों में भी जाती हैं ।'' अरुणा ने संक्षिप्त उत्तर दिया ।

इस प्रकार दोनों ने घर पर ही बहुत देर तक बातचीत की और कहीं बाहर नहीं गये ।

दूसरे दिन सुबह किसी धनी किसान का नौकर भार्गव को बुलाने आया । भार्गव अभी सो रहा था । अरुणा ने डर से पिता जी को नहीं उठाया और नौकर से कहा कि वे सो रहे हैं । तुम्हीं उन्हें उठा लो । तभी भार्गव की नींद टूट गई और नौकर को उसने बहुत डाँटा । लेकिन थोड़ी देर में तैयार होकर उसके साथ चल भी पड़ा ।

दूसरे दिन उदय और अरुणा खा-पीकर जल्दी ही घर से निकल पड़े । लेकिन साड़ियाँ देखने न जा सके । अरुणा उदय को दिन भर गाँव के पुराने जमीन्दारों के महलों के खंडहर, राधा जी का मन्दिर, कंजरों की बस्ती, नट का तमाशा और पता नहीं क्या-क्या दिखाती और समझाती रही । उदय जितना उसके सौन्दर्य पर मुग्ध था, उतना ही उसकी बुद्धि पर चकित। उनके लौट आने पर अरुणा की माँ ने उदय से पूछा, -''अरुणा तुम्हें कैसी लगी बेटे ।'' उदय संकोचवश कुछ बोल न सका । फिर उसने अपनी बेटी से अलग ले जाकर पूछा, -''उदय तुम्हें अब कैसा लगा ?''

अरुणा ने भी कोई उत्तर नहीं दिया हालांकि वह चाहती थी कि माँ को स्पष्ट बता दे कि इस बार तो उदय अच्छा लगा लेकिन पाँच साल पहले की मन में लगी गाँठ अभी खुली नहीं है ।

रात को जब सब एक साथ भोजन कर रहे थे तब गाँव के एक किसान भरत ने आकर भार्गव से कहा, -''कल प्रातः काल अपने खेत में कुआँ खोदने का मुहूर्त रखा है । आप का आना जरूरी है ।''

''कल नहीं आ सकूँगा ।'' भार्गव ने कहा।

''फिर जब आप को फ़ुरसत होगी, तभी मुहूर्त निकलवा लूँगा । लेकिन आप की उपस्थिति और आशीर्वाद के बिना यह काम नहीं होगा।'' भरत ने कहा ।

''जब ऐसी बात है तो कल ही आ जाऊँगा, लेकिन मुझे जगाने के लिए किसी को भेज देना।'' भार्गव ने कहा ।

''किसी को क्यों, मैं स्वयं आ जाऊँगा और आप को साथ लेता जाऊँगा । आप का वहाँ पर पधारना मेरे लिए सब कुछ है ।'' भरत ने विनयपूर्वक कहा ।

उदय को भार्गव की बात सुन कर आश्चर्य हुआ । उसने पूछा,-''आप को सवेरे सवेरे कोई नींद से उठा देता है तो उस पर नाराज हो जाते हैं। फिर भी आपने भरत को सवेरे क्यों बुलाया । कोई और समय रख लेते ?''

भार्गव इस बात पर जोर से ठठा कर हँसा और बोला,-''सवेरे उठते ही अपना गुस्सा किसी पर न उतारूँ तो दिन भर बेचैन रहता हूँ। और मैं यह भी नहीं चाहता कि हमेशा एक ही व्यक्ति पर गुस्सा उतारता रहूँ । आखिर वह भी क्यों सहे ? इसलिए नाराज होने के लिए मैं हर रोज अलग-अलग व्यक्ति को चुनता हूँ । अच्छा हुआ, आज भरत आ गया । उसका भी काम हो गया, मेरा भी ।''

संतोष की साँस लेकर उदय बोला,-आज समझ में आया कि आप की चिढ़ भी एक अनिवार्य दिनचर्या है । मैंने आप को पहला दिन गलत समझा था ।

भार्गव ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा,-''दूर से कुछ व्यक्ति दुष्ट और दंभी दिखाई पड़ते हैं । निकट से वे ही व्यक्ति शिष्ट, सौम्य और सद्भाव पूर्ण लगते हैं ।''

पिता की बात सुन कर अरुणा के मन में उदय के प्रति ग़लतफ़हमी की गाँठ पूरी तरह खुल गई । और भार्गव के चिढ़ को लेकर उदय की ग़लतफ़हमी भी दूर हो गई । दोनों ने उसी दिन माँ से बता दिया,-''हमदोनों एक दूसरे को चाहते हैं ।''

महाभारत

अगले दिन ही युद्ध प्रारंभ होनेवाला था । कुछ ही प्रहरों के बाद उस प्रलयंकारी विनाश-लीला का क्षण आनेवाला था जब बड़े-बड़े अनगिनत महारथी इस युद्ध की ज्वाला में कीट-पतंगों की तरह भस्म हो जायेंगे.

उसी रात को दुर्योधन ने अपनी सेना के प्रमुख योद्धाओं को बुला कर पूछा, - "पांडवों को निर्मूल कर देने में कितने दिन लग जायेंगे?"

भीष्म पितामह ने कहा कि पांडवों के सर्वनाश में कम से कम एक महीना लग जायेगा । द्रोण ने भी अपनी वृद्धावस्था की चर्चा करते हुए इतना ही समय बताया । कृपाचार्य के अनुसार पांडवों के सर्वनाश में दो महीने लग जायेंगे । अश्वत्थामा ने कहा कि मैं पांडवों को केवल दस दिनों में मृत्युलोक पहुँचा दूँगा । कर्ण ने कहा कि यह मेरे लिए पाँच दिनों से अधिक का काम नहीं है । इस पर भीष्म हँस पड़े और बोले, - "यह प्रलाप तभी तक करोगे जब तक कृष्ण के साथ अर्जुन तुम्हारे सामने नहीं आ जाता । उसके आते ही तुम्हारी यह शेखी खोखली हो जायेगी । तब तक अपनी झूठी प्रशंसा करते रहो ।"

गुप्तचरों से यह बात जब धर्मराज को मालूम हुई तो उन्होंने भी अर्जुन को बुला कर पूछा, - "कौरव सेना को समूल नष्ट करने में तुम्हें कितना समय लगेगा?"

अर्जुन ने धर्मराज को विजय का आश्वासन

देते हुए कहा, - "आप चिंता क्यों करते हैं, भ्राता श्री, हमारे योद्धाओं के हाथ कौरवों की मृत्यु और हमारी विजय निश्चित है । यदि तीनों लोक भी हमारे विरुद्ध शत्रु पक्ष में खड़े हो जायें तब भी एक क्षण में उन सब का विनाश हो सकता है, क्योंकि हमारे पास एक ऐसा अस्त्र है - पाशुपत, जो भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण किसी के पास नहीं है। किन्तु, ऐसे महा अस्त्र का प्रयोग सब पर नहीं किया जा सकता ।"

अगले दिन प्रातः काल होते ही कौरवों और पांडवों की सेनाएँ दो समुद्रों की तूफ़ानी लहरों की तरह रणक्षेत्र की ओर बढ़ने लगीं । दुर्योधन के पक्ष के सभी योद्धाओं के मुख पर विजय की आशा झलक रही थीं ।

सेनाओं की इस अथाह भीड़ में संसार के सभी युवा और स्वस्थ पुरुष किसी न किसी पक्ष से युद्ध करने आये थे । घरों में सिर्फ़ बच्चे, वृद्ध, स्त्रियाँ और रोगी ही रह गये थे ।

युद्ध अभी प्रारंभ नहीं हुआ था, तभी व्यास मुनि ने धृतराष्ट्र के पास आकर कहा, - "तुम्हारे पुत्रों और उनके पक्ष के सभी राजाओं का अन्त निकट आ गया है । उनके लिए चिन्ता न करना, क्योंकि उनकी यही अटल नियति है । यदि तुम युद्ध का दृश्य देखना चाहते हो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि दे सकता हूँ । इससे तुम युद्ध क्षेत्र की हर घटना अपनी आँखों के समक्ष होते हुए देख सकते हो ।"

इस पर धृतराष्ट्र ने कहा, - "अपने पुत्रों और भाई-बंधुओं को मरते हुए देखना बहुत कष्टप्रद होगा । लेकिन युद्ध का विवरण अवश्य जानना चाहूँगा । इसके लिए कोई उपाय हो तो कृपया बताइये ।"

तब व्यास ने कहा, - "मैं संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ । वह कुरुक्षेत्र का हर दृश्य देख सकेगा और वहाँ का सारा बृतांत तुम्हें सुनाता रहेगा ।"

इतना कह कर व्यास ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की । संजय युद्ध का सारा दृश्य देख कर धृतराष्ट्र को विवरण देता रहा ।

युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व कौरवों की सेना के प्रधान सेनापति भीष्म पितामह ने अपने योद्धाओं को सम्बोधित करते हुए कहा, - "राजाओं एवं शूरवीर योद्धाओ ! यह युद्ध आप सब के लिए स्वर्ग का द्वार है । इस द्वार से प्रवेश कर इन्द्रलोक एवं ब्रह्मलोक में सिधारिये । क्षत्रियों के लिए परलोक-गमन का यही यथोचित मार्ग है । उन्हें रोग शैया पर नहीं बल्कि वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मृत्यु का

वरण करना चाहिये । इसलिए निर्भय होकर आप सब युद्ध कीजिये ।''

कर्ण प्रतिज्ञा कर चुका था कि जब तक भीष्म रणक्षेत्र में रहेंगे तब तक वह युद्ध नहीं करेगा। इसलिए उसे छोड़ कर अन्य सभी योद्धा रणघोष करते हुए आगे बढ़ने लगे ।

दोनों पक्ष की सेनाएँ अपनी-अपनी व्यूह-रचना के अनुसार खड़ी थीं । भीम पांडव सेना का नेतृत्व कर रहा था । शिखंडी की सेना व्यूह के मध्य में थी । व्यूह के दायें भाग की सुरक्षा सात्यकि के हाथ में था । धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण व्यूह का निरीक्षण कर रहा था । दोनों सेनाओं के बीच में अर्जुन के सारथि श्रीकृष्ण ने रथ को खड़ा करके कहा, - ''अर्जुन ! पहले भीष्म, द्रोणाचार्य जैसे महारथियों की ओर देखो जिनसे तुम्हें युद्ध करना है ।''

अर्जुन ने सामने युद्ध करने के लिए खड़े अपने गुरुजनों, पितामहों, दादाओं, नानाओं, भाई-भतीजों को देखा और उन्हें मार देने की कल्पना मात्र से ही वह काँप उठा । उसका शरीर शिथिल हो गया और गांडीव उसके हाथ से गिर पड़ा । उसका मन दुख और विषाद से भर गया ।

उसने श्रीकृष्ण से कहा, - ''अपने ही वंश या परिवार का नाश कर राज्य-सुख भोगने में मुझे कोई औचित्य दिखाई नहीं देता । मुझे ऐसा रक्त रंजित राज्य-सुख नहीं चाहिये । मैं इन्हें नहीं मार सकता, इसलिए मैं युद्ध नहीं करूँगा ।''

इतना कह कर अर्जुन रथ के पिछले भाग में शिथिल होकर बैठ गया ।

श्रीकृष्ण ने तब अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित

करते हुए कहा, - ''अर्जुन! युद्धभूमि में तुम अचानक कैसी अशोभनीय मनोवृति के शिकार हो गये? क्षत्रिय धर्म के प्रतिकूल कापुरुष का भाव तुम्हारे जैसे वीर पुरुष को शोभा नहीं देता । तुमने क्या सोचा है कि युद्धभूमि से डर कर भाग जाने में तुम्हारा कितना अपयश होगा? संसार तुम्हें क्या कहेगा?

''क्षत्रिय का उत्तम धर्म है - युद्ध । यदि तुमने अपने धर्म का पालन नहीं किया तो न केवल तुम्हारी अपकीर्ति होगी, बल्कि तुम स्वर्ग से भी बंचित रह जाओगे । और क्षत्रिय के लिए तो अपकीर्ति भी मृत्यु के समान है ।

''रही बात तुम्हारे हाथों द्वारा तुम्हारे परिवार की मृत्यु की । एक तो बिवेकी और ज्ञानी जीवन-मृत्यु को लेकर चिन्तित नहीं होते, क्योंकि वे जानते हैं कि मृत्यु आत्मा की नहीं होती । आत्मा शाश्वत

और अजन्मा है । जैसे हम पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण कर लेते हैं, वैसे ही आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर ग्रहण कर लेती है । इसलिए मृत्यु को लेकर चिंता करना व्यर्थ है ।

"तुम्हें जीवन-मृत्यु, दुख-सुख, लाभ-हानि, जय-पराजय की भावना से ऊपर उठ कर अपने कर्तव्य - क्षत्रिय धर्म का पालन करना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा ही करते हैं । यदि तुम युद्ध में विजयी हुए तो राज्य का सुख भोगोगे । यदि युद्ध में तुम्हारी मृत्यु हो गई तो स्वर्ग का सुख भोगोगे । अतः युद्ध करने में लाभ ही लाभ है और युद्ध से पलायन करने में हानि ही हानि है । इसलिए उठो और अपने कर्त्तव्य और वीर धर्म का पालन करो।" इस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया ।

श्रीकृष्ण के उपदेश से अर्जुन का विषाद दूर हो गया और वह युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया ।

तभी धर्मराज युधिष्ठिर ने अपना कवच और अस्त्र-शस्त्र उतारा और अपने रथ से उतर कर पैदल वे भीष्म की ओर बढ़े । अर्जुन और शेष पांडव उनका अनुसरण करने लगे । सबसे पीछे श्रीकृष्ण भी चल पड़े ।

अर्जुन तथा अन्य भाइयों ने युधिष्ठिर से पूछा, - "भ्राता श्री ! आप निरायुध होकर शत्रु सेना की ओर क्यों जा रहे हैं?" लेकिन युधिष्ठिर बिना उत्तर दिये आगे बढ़ते गये ।

तब श्रीकृष्ण ने उनके संशय को दूर करते हुए कहा कि धर्मराज भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्य से युद्ध की अनुमति और उनसे आशीर्वाद लेने जा रहे हैं । गुरुजनों के आशीर्वाद से विजय निश्चित होती है ।

कौरव सैनिकों ने यह समझा कि युधिष्ठिर युद्ध के भय से अपने भाइयों के साथ भीष्म की शरण में जा रहा है । इसलिए वे तरह-तरह की बातें करने लगे । कहने लगे - "छी-छी ! पांडव सच्चे क्षत्रिय नहीं हैं । इतने वीर होते हुए युद्ध का समय आने पर मृत्यु से डर गये । अब तो बिना युद्ध ही दुर्योधन की जीत हो गई ।"

पाण्डवों की सेना में भी यह जानने की उत्सुकता थी कि धर्मराज भीष्म से क्या कहेंगे और भीष्म क्या उत्तर देंगे । उनकी बात का अर्जुन और श्रीकृष्ण पर क्या प्रभाव पड़ेगा? युद्ध के नाम पर हर्षित हो जानेवाले भीम पर क्या प्रतिक्रिया होगी? दोनों पक्ष की सेनाओं में यह सब जानने का उतावलापन था ।

तभी धर्मराज भयंकर शत्रुसेना के बीच से होकर
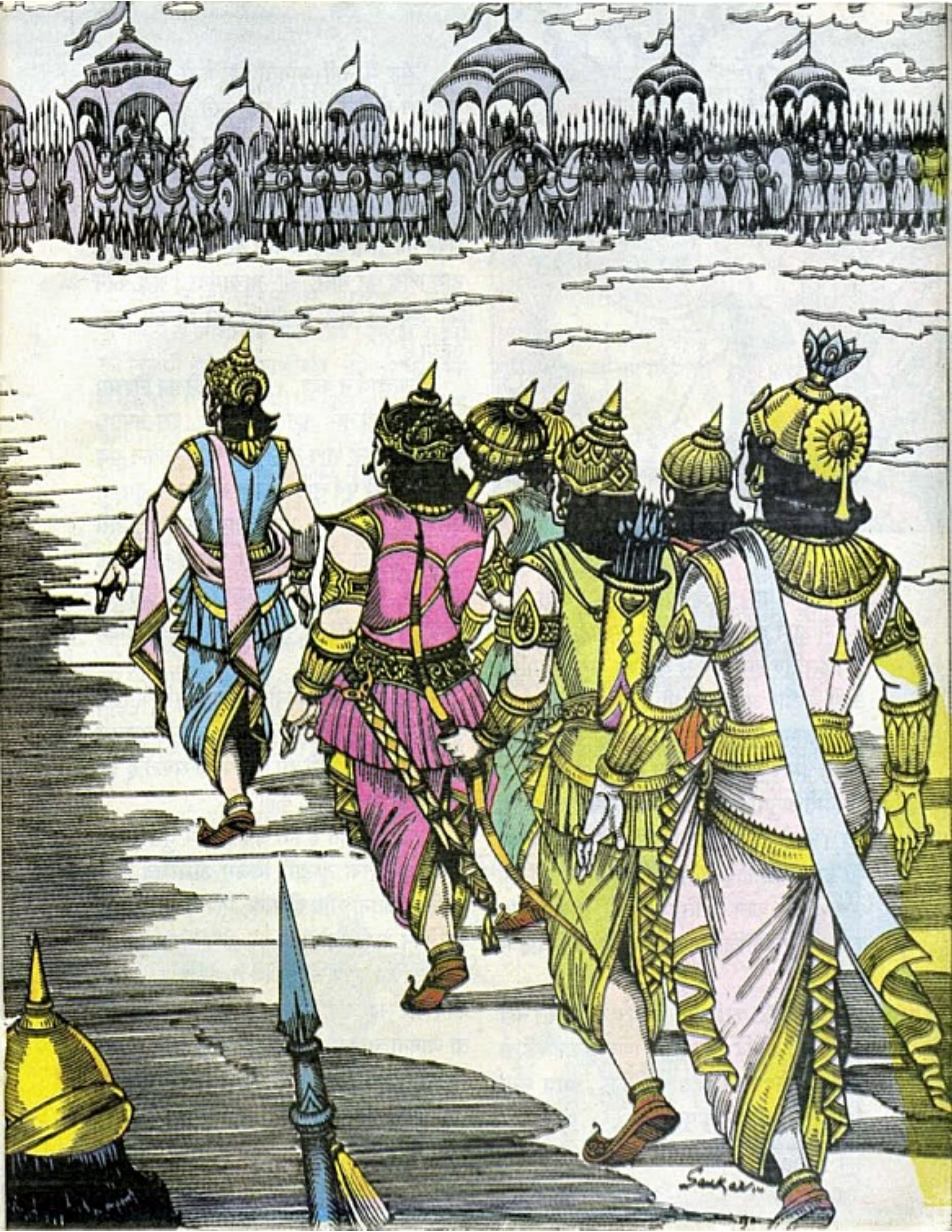
पितामह के पास पहुँचे और बोले, - "दादा श्री ! युद्ध में आप का सामना करना दुस्साहसपूर्ण कार्य है । इसलिए हम आप से युद्ध की अनुमति माँगने आये हैं और आशीर्वाद भी ।"

पितामह धर्मराज पर प्रसन्न होकर बोले, - "मैं तुम्हारे इस व्यवहार से बहुत सन्तुष्ट हूँ । युद्ध के लिए मेरी अनुमति और आशीर्वाद दोनों हैं। विजयी भव । चाहो तो कोई वरदान माँग लो । धन मनुष्य को दास बना देता है । इसीलिए मैं कौरवों की ओर से युद्ध करने के लिए विवश हूँ । कोई ऐसा वर नहीं माँगना जिससे इस कर्त्तव्य के निर्वाह में बाधा पड़े ।"

"पृथ्वी की कोई शक्ति आप को पराजित नहीं कर सकती । यदि आप हमारी विजय चाहते हैं तो आप ही अपनी पराजय का कोई उपाय बता दीजिये ।" धर्मराज ने पूछा ।

"यह मैं नहीं जानता कि कैसे मैं युद्ध में पराजित हो सकता हूँ । युद्ध करते हुए मेरी मृत्यु भी लिखी हुई नहीं है । इस विषय में मुझसे फिर कभी मिलना ।" पितामह ने परामर्श दिया ।

इसके पश्चात धर्मराज भीष्म से आशीर्वाद लेकर गुरु द्रोणाचार्य के पास गये और विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर बोले, - "आचार्यवर ! युद्ध करने की अनुमति और आशीर्वाद की याचना करने आया हूँ ।"

द्रोणाचार्य ने कहा, - "युद्ध करने का निश्चय करते समय ही तुम्हें आना चाहिये था । इस अपराध के लिए मैं तुम्हें शाप दे सकता था । लेकिन युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व तुम्हारे आने से अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । युद्ध करो और विजयी भव । तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ । कौरवों का नमक खाया है, इसीलिए तुम्हारी ओर से युद्ध नहीं कर सकता । इसे छोड़कर कुछ और माँगना चाहते हो तो माँ लो ।"

"युद्ध में आप को जीत पाना किसी के लिए संभव नहीं है । इसलिए आप ही अपनी पराजय का मर्म बता दें । तभी हम विजयी हो सकते हैं ।" धर्मराज ने विनयपूर्वक कहा ।

"यह निश्चित है कि जब तक मैं युद्ध करता रहूँगा, तब तक तुम्हारी विजय असम्भव है । इसलिए जितना शीघ्र हो सके, मुझे मृत्यु के साथ आलिंगन के लिए भेज दो ।" द्रोण ने कहा ।

"लेकिन आप तो अजेय हैं । आप को भला कौन मार सकता है? आप की मृत्यु का रहस्य ही तो जानना चाहता हूँ ।" धर्मराज ने कहा ।

"जब तक मेरे हाथ में धनुष-बाण रहेगा और जब तक मैं युद्ध करता रहूँगा, मुझे न कोई पराजित

कर सकता है, और न मार सकता है । लेकिन मेरे कानों में कोई अप्रिय बात पड़ जाये और वह बात किसी विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा कही गई हो तो मैं अस्त्र त्याग देता हूँ । तभी मुझे कोई मार सकता है, अन्यथा नहीं ।'' द्रोण ने अपनी मृत्यु का भेद बताते हुए कहा ।

धर्मराज द्रोणाचार्य से आशीर्वाद लेकर कृपाचार्य से आशीर्वाद माँगने गये । उन्होंने पांडवों को विजयी होने का आशीर्वाद देते हुए कहा कि मैं युद्धभूमि में किसी से भी पराजित नहीं हो सकता और न मर सकता हूँ । फिर भी विजय तुम्हारी होगी । इसलिए निश्चिंत होकर जाओ और युद्ध करो ।

तत्पश्चात धर्मराज ने मामा शल्य से भी युद्ध की अनुमति और आशीर्वाद माँगा । शल्य ने भी युद्ध की अनुमति और विजय का आशीर्वाद देते हुए युधिष्ठिर से कुछ और माँगने के लिए कहा । इस पर धर्मराज के कर्ण का वध करने में सहायता माँगने पर शल्य ने कहा, - ''यह सहायता भी मिलेगी । जाओ निर्भय होकर युद्ध करो और विजयी हो ।''

जब सभी पांडव गुरुजनों से आशीर्वाद लेकर लौट आये तब श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा, - ''जब तक पितामह युद्ध करते रहेंगे, तब तक तुम कौरवों की ओर से युद्ध नहीं करोगे, जैसा कि तुमने घोषणा की है । किन्तु तुम तब तक पांडवों की ओर से युद्ध क्यों नहीं कर सकते? भीष्म की मृत्यु के बाद कौरवों के पक्ष में चले जाना ।''

''मैं दुर्योधन के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा सकता हूँ और किसी भी स्थिति में उसके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता ।'' कर्ण ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

तब दोनों सेनाओं के मध्य खड़े होकर और कौरव सेना को सम्बोधित करते हुए धर्मराज ने कहा, - ''आप लोगों में से कोई अब भी सत्य और न्याय की रक्षा के लिए हमारे पक्ष में करना चाहें तो उनका स्वागत है ।''

तभी दुर्योधन के भाई युयुत्सु ने आगे बढ़ कर पांडवों की ओर से युद्ध करने की अपनी इच्छा प्रकट की । धर्मराज ने उसे अनुमति दे दी ।

इसके बाद शंखनाद और रणभेरियों से दिशाएँ गूँज उठीं और महाभारत का प्रलयंकारी युद्ध प्रारंभ हो गया ।

सच्चा पंडित

चक्रधरपुर में एक युवा ब्राह्मण रहता था। नाम था चक्री। बचपन में ही उसके माता-पिता स्वर्ग सिधार गये थे। इसलिए वह अधिक पढ़ - लिख नहीं सका। फिर भी, थोड़ा-बहुत पंचांग देखना और बिवाह, यात्रा आदि के लिए शुभ मुहूर्त निकालना वह जानता था। इसी व्यवसाय से वह अपनी आजीविका चला लेता और थोड़ा-बहुत बचा भी लेता था।

चक्री को कविता बनाने और उसे गाकर सुनाने का जन्मजात शौक था। वह अपने गाँव की सराय के चबूतरे पर बैठ कर प्रायः अपनी कविताएँ गुनगुनाता रहता था। उसने कुछ पंडितों से काव्यशास्त्र की कुछ मूल बातें - जैसे छन्द, मात्रा और अलंकार योजना आदि सीख ली थीं, जिससे उसकी कविताओं में श्रोताओं पर प्रभाव पैदा करने की शक्ति आ गई थी।

एक बार सराय में विश्राम के लिए ठहरे एक कवि ने चक्री की कविताएँ सुन कर उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, - ''तुम एक अच्छा कवि होने के साथ-साथ एक अच्छा गायक भी हो। लेकिन इन कलाओं को जब तक आश्रय नहीं मिलता तो इनका पल्लवन-पुष्पण नहीं हो पाता। मेरी तो सलाह है कि तुम राजा का आश्रय प्राप्त करने का प्रयास करो। इससे तुम्हारी आजीविका का साधन सुगम हो जायेगा, समाज में सम्मान मिलेगा और तुम्हारे काव्य और प्रतिभा में निखार आ जायेगा। तुम्हारी रचना चिरस्थायी हो जायेगी।''

कवि की बातों से उत्साहित होकर वह दूसरे ही दिन राजा से मिलने के लिए राजधानी की ओर चल पड़ा। राजधानी पहुँचने से पहले ही सन्ध्या हो गई। इसलिए एक गाँव में रुक गया और रात में बिश्राम के लिए सराय ढूँढने लगा। उस गाँव के एक बरगद के बृक्ष के नीचे चबूतरे पर बैठे केशब

मार्कण्डेय

से उसने पूछ-ताछ की । केशव ने चक्री की पूरी बातें सुनने के बाद कहा, "मैं भी ब्राह्मण हूँ । आप को भोजन और विश्राम के लिए सराय में जाने की आवश्यकता नहीं है । आप आज हमारे अतिथि हैं। कल मैं आप को राजधानी भेजने की व्यवस्था भी कर दूँगा ।"

चक्री ने सहर्ष केशव का आतिथ्य स्वीकार कर लिया ।

केशव ने चक्री को घर ले जाकर उसका अपने बृद्ध पिता से परिचय कराया । उसका पूरा परिचय सुनकर बृद्ध पिता ने कहा, - "तुम तो मेरे दूर के रिश्तेदार निकले । अब तुम कुछ दिन यहीं रहो और पुरोहित का मेरा काम संभाल लो । जब कुछ धनार्जन के साथ-साथ अनुभव भी हो जाये तो राजाश्रय के लिए राजधानी चले जाना ।"

तभी वहाँ केशव की बेटी स्वाति आ गई और बोली, - "दादाजी, खाना परोस दिया है । पिता जी आप दोनों को खाने पर बुला रहे हैं ।"

बृद्ध ब्राह्मण ने स्वाति से चक्री का परिचय कराते हुए कहा कि ये राजा के आस्थान-कवि बनने जा रहे हैं ।

इस पर स्वाति ने हँसते हुए कहा, "राजा के आस्थान में अभी तीन कवि मौजदू हैं । उनमें से एक दिन के कवि हैं, दूसरे सायंकाल के कवि हैं, और तीसरे रात के कवि हैं । ये चक्री महाशय किस काल के कवि हैं?"

चक्री ने स्वाति के गूढ़ प्रश्न का उत्तर गूढ़ भाषा में ही दिया । उसने कहा, "मुझे तो सभी काल देखने हैं । ये तीनों काल के कवि यदि मुझे

योग्य मानें तब मैं वर्तमान काल का कवि बन सकता हूँ ।"

स्वाति और चक्री के इस गूढ़ संबाद को राजा के एक गुप्तचर ने सुन लिया । राजा ने अपने देश में छिपे हुए शत्रुओं का पता लगाने के लिए राज्य भर में गुप्तचरों का जाल फैला रखा था । उस गुप्तचर ने राजा को हू बहू वही संवाद सुना दिया । राजा उस संवाद का अर्थ नहीं समझ सका, इसलिए उसने आस्थान के तीनों कवियों को बुला कर उनसे उसका सरलार्थ जानना चाहा ।

तीनों कवि यह संवाद सुन कर क्रोध से तमतमाने लगे । उन्होंने कहा, "महाराज, उन दोनों के इस संवाद में हम तीनों कवियों के लिए बड़े अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया गया है । दिन का कवि या पंडित जुआरी को कहते हैं ।

सायंकाल का कवि चोर और रात का कवि व्यभिचारी कहलाता है ।''

राजा ने दूसरे दिन स्वाति और चक्री को राज सभा में बुला कर कहा, - ''तुम दोनों ने हमारे आस्थान के कवियों पर लगाये गये आरोपों को सिद्ध नहीं किया तो तुम्हें कठोर दण्ड भुगतना होगा ।''

चक्री और स्वाति ने पहले ही आपस में बातचीत करके यह निश्चय कर लिया था कि राजा को किस प्रकार उत्तर देना है । चक्री ने राजा को झुककर अभिवादन करते हुए विनयपूर्वक कहा, ''महाराज, दिन के पंडित का अर्थ है, द्यूत के कारण पांडवों की दुख भरी गाथा का ज्ञानी यानी महाभारत का पंडित । सायंकाल का पंडित वह है जो सीता-हरण की गाथा का ज्ञानी हो यानी रामायण का पंडित । रात्रि का पंडित वह है जो रसों के राजा शृंगार के संयोग -वियोग दोनों पक्षों से ओतप्रोत श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र यानी महाभागवतम का पंडित हो ।

''आप के तीनों कवि तीन महान ग्रंथों के महापंडित हैं । यदि ये तीनों महान पंडित मेरी योग्यता को स्वीकार करें, तभी मैं सच्चा पंडित बन सकता हूँ यानी आप के आश्रय में रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूँ । मेरे और स्वाति के बीच हुए संवाद का यही सरलार्थ है ।''

चक्री के स्पष्टीकरण से तीनों कवि बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा, - ''हम लोगों ने जान-बूझ कर तुम्हारे संवाद का विपरीत अर्थ निकाला था । तुमने उन विपरीत अर्थों के आधार पर यह जान लिया कि हम तीनों किस-किस महाकाव्य के पंडित हैं । इससे यह पता चलता है कि तुम सचमुच सच्चे पंडित हो ।''

राजा ने चक्री का यथोचित सम्मान किया और उसे अपने आस्थान का कवि नियुक्त कर लिया । कुछ ही दिनों में चक्री और स्वाति परिणय - बन्धन में बंध गये । कालान्तर में चक्री ने सुन्दर काव्यों की रचना की और एक महाकवि के रूप में ख्याति प्राप्त की ।

किफ़ायती का रहस्य

पश्चिमी तट पर एक गाँव में गणेश और गंगाधर नामक दो युवक रहते थे । बचपन से ही वे दोनों गहरे दोस्त थे । जब वे दोनों युवा हो गये तो वे अपनी आजीविका की खोज करने लगे । तभी उनके गाँव में भयंकर अकाल पड़ गया । इसलिए उन दोनों ने निश्चय किया कि समृद्ध पूर्वी तट के किसी नगर में जाकर आजीविका का कोई उपाय करेंगे।

''अरे भाई, मनुष्य का पेट भरने के लिए आखिर कितना अन्न चाहिये ? थोड़े से चावल और सूखी मछलियाँ खाकर हम कई साल जी सकते हैं । इस तरह किफ़ायत से दिन काटते, मेहनत करते हुए हम जो कुछ कमायेंगे, उस में से थोड़ा अंश बचाते जायें तो उस पूँजी से हम कोई व्यापार करके अपनी ज़िंदगी आराम से बिता सकते हैं ।'' गंगाधर ने कहा ।

''अच्छी बात है, हम क़िफ़ायत से दिन बिताते हुए धन कमायेंगे ।'' गणेश ने कहा ।

दोनों घर से निकल पड़े । चलते-चलते आखिर पूर्वी तट के एक प्रदेश में पहुँचे । वहाँ पर चारों तरफ़ लहलहाते खेत देख वे दोनों मित्र खुशी से फूले न समाये ।

दोनों साथी एक नगर में पहुँचे । वहाँ पर खूब व्यापार चल रहा था । दोनों ने सोचा कि एक दो साल तक अपना अपना काम अलग रह कर रहें और अपनी अपनी क़िस्मत की जाँच करें जिस से एक का बोझ दूसरे पर न पड़े । यह सोचकर दोनों दो दिशाओं में चले गये ।

गणेश मन लगा कर काम करते हुए धन कमाने लगा और गंगाधर के कहे मुताबिक़ चावल और सूखी मछलियाँ खाकर क़िफ़ायत के साथ दिन बिताने लगा ।

मगर गणेश इस तरह किफ़ायत से बहुत दिनों तक नहीं रह सका । ख़ासकर खाने के संबंध में उसे तक़लीफ़ मालूम होने लगी । पास में धन के रहते कंजूसी कर पेट को काटना उसे पसंद न आया । इसलिए उसने एक दिन एक मुर्गी खरीदी और उसे पकाकर खूब खाया । इस से उसकी जान में जान आई । वह सोचने लगा कि आराम से खाने के लिए न हो तो कड़ी मेहनत कर धन

बदरी प्रसाद

कमाने से फ़ायदा ही क्या है ।

फिर भी उसके दिल में इस बात का दुख होने लगा कि वह क़िफ़ायत करने के नियम का उल्लंघन कर रहा है । इसलिए वह फिर कुछ दिन तक चावल और सूखी मछलियाँ खाने लगा। पर उसे वह भोजन अच्छा न लगा । उसे बार-बार मुर्गी के माँस की याद आने लगी ।

आखिर गणेश मुर्गी के लोभ में आ गया । उसके पास जो कुछ धन था, उसे स्वादिष्ट भोजन करने में खर्च करने लगा । इस तरह धीरे-धीरे उसका धन खर्च होता गया, और काम करने में उसका शरीर साथ देने से इनकार करने लगा । इसके फलस्वरूप वह इस हालत में पहुँचा गया कि मामूली चावल और सूखी मछलियों के लिए भी आवश्यक धन वह कमा न पाया ।

इस बीच गंगाधर किफायत से काम चला कर अच्छी हालत में पहुँच गया। वह अपनी कड़ी मेहनत की कमाई को बचाकर धीरे-धीरे व्यापार भी करने लगा । उसकी कमाई भी बढ़ गयी । उसने ज़मीन व जायदाद भी बना ली । एक मकान खरीदा और शादी करके आराम से अपने दिन बिताने लगा ।

गणेश को मालूम हो गया कि उसी के जैसे खाली हाथ उस शहर में आकर गंगाधर बड़ा अमीर बन गया है और आराम की जिंदगी बिता रहा है । इसलिए वह अपने मित्र की मदद पाने के ख्याल से उसके घर गया और उस से बोला कि उसकी क़िस्मत ने साथ नहीं दिया, इसलिए उसे एक जून चावल और सूखी मछलियाँ मिलना भी दूभर हो गया है ।

''मैं इसका इंतज़ाम कर दूँगा कि तुम्हें भी चावल और सूखी मछलियाँ मिल जायें, पर

तुम अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ !'' यह कह कर गंगाधर ने गणेश के लिए अपने घर के अहाते में एक छोटी झोंपड़ी बनवायी और रोज़ उसके यहाँ चावल और सूखी मछलियाँ भेजने लगा ।

कुछ दिन और बीत गये । एक दिन गंगाधर ने गणेश को बुलाकर समझाया - ''रोज सूखी मछलियाँ खाने में शायद तुम्हें तक़लीफ़ मालूम होती होगी । एक काम करो । अपने इमली के बगीचे का सब से छोटा पेड़ मैं तुम्हें दे देता हूँ । यदि उसकी पत्तियाँ मछलियों में डालकर पकाओ तो भोजन स्वादिष्ट हो जायेगा !''

गणेश अपने दोस्त के साथ इमली के बगीचे में गया । वहाँ के सबसे छोटे पौधे की पत्तियाँ लाकर तरकारी में डाल दी । तरकारी उसे बड़ी स्वादिष्ट लगी । मगर कुछ ही दिनों में उस पौधे की सारी पत्तियाँ खत्म हो गयीं ।

गणेश ने अपने मित्र के पास जाकर एक और इमली के पेड़ से पत्तियाँ तोड़ने की अनुमति माँगी । गंगाधर ने कहा - ''तुम आज से सबसे बड़े इमली के पेड़ से पत्तियाँ तोड़ लो ।''

कुछ और दिन बीत गये । गंगाधर ने गणेश को बुलाकर पूछा - ''तुम जिस पेड़ से पत्तियाँ तोड़ते हो उसकी पत्तियाँ खत्म तो नहीं हुईं?''

''अरे भाई, उस पेड़ की पत्तियाँ कैसे खत्म होंगी? मैं एक दिन मुट्ठी भर पत्ती तोड़ता हूँ तो दूसरे दिन दो मुट्ठी भर पत्तियाँ उग जाती हैं ।'' गणेश ने कहा ।

''मेरे दोस्त ! मैंने और तुमने जो काम किया, उसमें यही अंतर है ! तुम्हारी कमाई जब बहुत कम थी, तब तुमने सारा खर्च कर डाला । मैंने उसके बढ़ने तक सब्र किया । इमली के उस छोटे पेड़ की तरह तुम्हारी ज़िंदगी ठूँठ बन गयी है । लेकिन इमली के बड़े पेड़ की तरह मेरी ज़िन्दगी फल-फूल रही है ।'' गंगाधर ने कहा।

''तुमने मुझे अच्छा सबक सिखाया । आज से मैं तुम्हारी कमाई पर निर्भर नहीं रहूँगा। और अपने पैरों पर आप खड़े होने का प्रयत्न करूँगा ।'' यह कह कर गणेश ने अपने दोस्त के बताये मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया।

नम्रता राजा के लिए भी

चित्र : शंकर ली
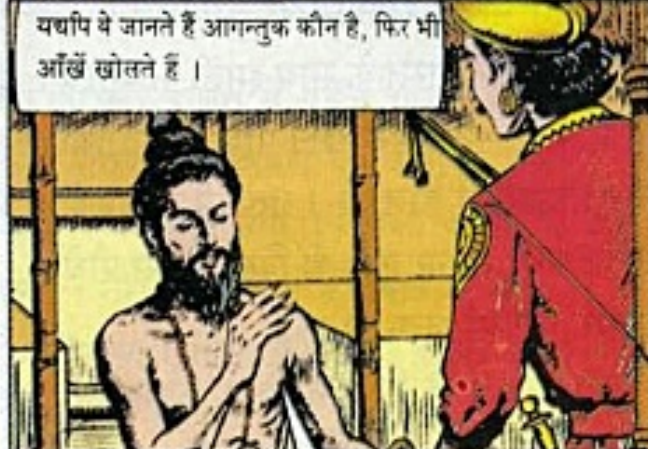
राजा के महल में लौटते ही उस पर अभिमान हावी हो जाता है ।
यदि जंगल का ऋषि ऐसा कहता है तो मेरी प्रजा को भी तो मालूम हो कि मैं कितना न्यायप्रिय और बुद्धिमान हूँ !

राजा एक भोज देना चाहता है और शाही बावर्ची को बुलाता है ।
भोज की तैयारी करो ..... जंगल से करेला लाकर उसकी कढ़ी बनाओ.... केवल नीम की पत्ती से पुडिंग बनाओ ।
जी महाराज !

अतिथि और दरबारी पहले राजा के खाने का इंतजार करते हैं ।
उफ ! यह तो बहुत कड़वा है !

राजा अपनी निराशा छिपाने का प्रयास करता है । वह बावर्ची को बुलाकर धीरे से कुछ कहता है ।
यह सब ले जाओ और सामान्य भोज्य ले आओ ।

अतिथियों के चले जाने के बाद राजा जंगल में ऋषि के पास जाकर भोज के विषय में बताता है ।
ऋषिवर ! करेला और नीम के पत्ते आश्रम में मीठे लगे । महल में वे कड़वे थे ।
राजा ! जब तुम पहले आये थे, तब विनम्र थे । मेरी प्रशंसा सुनकर तुममें मिथ्याभिमान आ गया । तुममें विनम्रता नहीं रही । इसलिए तुम्हारे लिए हर चीज़ कड़वी हो गई ।

महल वापस जाते समय वह शर्मिन्दा अनुभव करने लगा । उसने महसूस किया कि राजा को भी विनम्र होना चाहिये ।

चन्दामामा
'भारत की खोज' प्रश्नोत्तरी

इस अंक में दी गई प्रश्नोत्तरी के उत्तर अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे । तब तक इनके उत्तर आप स्वयं खोजने की कोशिश करें और भारत के पुरा काल व परम्परा के ज्ञान से अपने को समृद्ध करें ।

1

1. a प्राचीन भारतीय साहित्य की किस कृति को प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है?

   b प्राचीन भारतीय साहित्य की किस कृति की रचना दो ऋषियों ने मिल कर की?

   c किस कृति को भारत का प्रथम ऐतिहासिक नाटक होने का गौरव प्राप्त है?

   d कालिदास के बाद कौन प्रसिद्ध नाटककार हुआ? उसकी प्रसिद्ध कृति कौन-सी है?

2

एक राजकुमार सेना के साथ अपने ज्येष्ठ भ्राता, जो राजा था, के द्वारा छोड़े गये अश्व के साथ भ्रमण कर रहा था । यदि अश्व किसी भी राजा द्वारा बिना पकड़े या रोके वापस आ जाता तो अश्व का स्वामी सम्राट घोषित कर दिया जाता । लेकिन अश्व के साथ चलने वाले राजकुमार और उसकी सेना को एक युवक ने चुनौती दे दी । फलस्वरूप दोनों में युद्ध हो गया । राजकुमार मारा गया । लेकिन एक स्त्री ने उसे पुनर्जीवित कर दिया। बाद में यह ज्ञात हुआ कि वह युवक कोई और नहीं, बल्कि स्वयं राजकुमार का ही पुत्र था ।
राजकुमार कौन था? युवक कौन था? स्त्री कौन थी?

सर्जनात्मक स्पर्द्धाएँ

बुरे आदतें

लक्ष्मीपुर नामक गाँव में राम नाम का एक साधारण किसान रहता था। वह बड़ा मितव्ययी था। बहुत जरूरत पड़ने पर ही खर्च करता था। यहाँ तक की जब बच्चे थाली में कुछ खाना छोड़ देते, तो उन्हें डाँटने-डपटने लगता और घण्टों तक समझाता कि अन्न में भगवान रहते हैं। इसे बर्बाद नहीं करना चाहिये। पत्नी को भी समझाता कि बच्चों को खाना उतना ही परोसो जितना वे खा सकें। उसकी पत्नी सीता को उसकी यह मितव्ययिता भाती नहीं थी। उसकी दृष्टि में उसका पति सनकी था। वह बच्चों का समर्थन करती हुई बोलती, - "क्या हम इतने दरिद्र हैं कि एक-एक दाने का हिसाब रखें। अन्न कोई सोना तो नहीं है कि रत्ती भर इधर से उधर नहीं हो सकता।"

लेकिन राम की दृष्टि में मितव्ययी होना, किसी चीज को व्यर्थ नष्ट होने से बचाना और फिजूल खर्ची को रोकना सबसे बडी बुद्धिमानी थी। उसे अपनी पत्नी और बच्चों की आदतें अच्छी नहीं लगती थीं। इसलिए उनकी इन आदतों को सुधारने के लिए उसने एक योजना बनाई।

उसने एक गुरुवार की शाम को अपनी पत्नी से कहा, - "कल सवेरे हम सब अन्नपूर्णेश्वरी देवी के मन्दिर में उनके दर्शन करने जायेंगे। साथ ले जाने के लिए थोड़ा-सा अल्पाहार बना देना। देवी के दर्शन कर वहीं खा लेंगे और वापस लौट आयेंगे।"

सीता ने सहर्ष पति की बात मान ली। दूसरे दिन तड़के उठ कर उसने झटपट कुछ मीठा और कुछ नमकीन तैयार किया और उसकी एक गठरी बनाकर उसे थैले में डाल कर पति को दे दिया। फिर बच्चों को तैयार कर सब मन्दिर के लिए चल पड़े।

गर्मी के दिन थे। अन्नपूर्णेश्वरी देवी का मन्दिर पहाड़ी पर होने के कारण सीता ऊपर की चढ़ाई में जल्दी ही थक गई और पसीने-पसीने हो गई। लेकिन किसी तरह रुक-रुक कर मन्दिर में देर से पहुँची। बच्चे और राम दौड़ते हुए जल्दी ही ऊपर पहुँच गये। शुक्रवार होने के कारण मन्दिर में बहुत भीड़ थी। इसलिए दर्शन करते-करते दोपहर हो गया।

लौटते समय सीता और बच्चों को थकावट और भूख के मारे चला नहीं जा रहा था। इसलिए मार्ग में एक गलाब के पास सीता रुकती हुई बोली, "यहाँ पर थोड़ी देर रुक कर नाश्ता कर लेतें हैं। बच्चे भूखे और थके दोनों हैं। थैले से नाश्ता निकालिये।"

राम ने थैले में हाथ डाल कर टटोलते हुए दुखी होकर कहा, - "गजब हो गया। लगता है नाश्ते की गठरी तो पूजा सामग्री लेते समय उसकी दुकान पर ही छूट गई। अब तो भूखे ही घर लौटना पड़ेगा।"

सीता भुलक्कड़ पति को कोसती हुई थकी-माँदी घर पहुँची और भूखे बच्चों को तुरन्त कुछ खिलाने के लिए रसोई-पानी में लग गई।

"रसोई का काम बाद में कर लेना। भूखी हो, कुछ खा तो लो। बच्चों को भी बुला लो।" इतना कह कर राम ने मुस्कुराते हुए थैले से नाश्ते की गठरी निकाली।

सीता नाश्ते की गठरी को देख कर हैरान रह गई और नाराज होती हुई बोली, - "तुम भी कैसे पत्थर दिल हो। तुमने जान-बूझ कर बच्चों को भूखा रखा!"

राम चुपचाप सुनता रहा। सीता राम को कुछ उलटा-सीधा बोलती हुई बच्चों को नाश्ता परोस कर खुद भी खाती रही।

जब बच्चे खा चुके तब राम ने सीता से कहा, - "जरा अब बच्चों की थालियों को तो देखो। आज खाने का एक दाना भी नहीं छूटा। क्यों?"

सीता यह देख कर हैरान रह गई कि आज बच्चों ने सचमुच एक दाना भी नहीं छोड़ा। लगता है खाना खाने के बाद थालियाँ साफ कर दी गई हों।

"जिस तरह धन का मूल्य गरीब अधिक समझता है, उसी प्रकार अन्न का महत्व भूखा ही समझ सकता है। मैंने यही समझाने के लिए यह नाटक किया। बच्चों की बुरी आदतों को बचपन में ही दूर कर देना चाहिये। जब छोटा पौधा ही नहीं झुकता तो वृक्ष बन जाने पर क्या वह झुकेगा?" राम ने सीता को समझाते हुए कहा।

सीता उस दिन से बच्चों को थाली में थोड़ा कम ही खाना परोसने लगी। माँगने पर भी थोड़ा-थोड़ा देती। इससे बच्चों की थाली में जूठा छोड़ने की आदत छूट गई और सीता भी मित व्ययिता का मर्म समझ गई।

आर. निवास

भारत
तब और अब
श्रीनगर

एक नगरसुन्दर और शालीन

जम्मू और कश्मीर की राजधानी श्रीनगर 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार एक मनोरम और शालीन नगर है, इसलिए नहीं कि इसका नाम ऐसा है, बल्कि इसलिए कि प्रकृति ने ही इसे इतना रमणीय बनाया है । सागर-तल से 1768 मीटर की ऊँचाई पर बसे नगर की संरचना के महत्वपूर्ण अंग हैं - मन मोह लेनेवाली डल झील, अनेक बिहार उद्यान तथा बाग। इसके अतिरिक्त, झेलम नदी इसकी प्राकृतिक सुषमा में चार चाँद लगा देती है ।

पौराणिक युग में कश्मीर जल का बृहत् विस्तार था । इस पर जलोद्भव नाम के असुर का राज्य था जिसका अर्थ है जल से प्रकट होनेवाला । वह अपने जल-साम्राज्य से निकल कर उसके चतुर्दिक रहनेवाले लोगों को नष्ट कर देता । जब तक वह जल में रहता, कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था । यह बरदान उसका कवच था ।

कश्यप ऋषि असुर के जीवन का यह रहस्य जानते थे । उन्होंने अतिभौतिक शक्ति से युक्त एक हल चला कर उस जल-प्रसार की हर बून्द सोख ली। जल के सूखते ही वह असुर अपनी शक्ति खो बैठा और उसका अन्त हो गया ।

कहा जाता है कि उस क्षेत्र को लोग कश्यप-मीर कहने लगे जो कालान्तर में संक्षिप्त होकर कश्मीर रह गया ।

कल्हन कृत 'राजतरंगिनी' के अनुसार, जिसमें कश्मीर के राजाओं का इतिहास है, श्रीनगर की स्थापना सम्राट अशोक ने की थी । वास्तव में श्रीनगर की स्थापना का श्रेय उनकी पुत्री चारुवती

को मिलना चाहिये । अपने पिता के साथ जब वह वहाँ गयी तो डल झील को देख कर उस पर मुग्ध हो गयी और बोली, - "अहा, ध्यान करने के लिए कितना प्रशान्त स्थल है यह?" सम्राट अशोक ने इससे प्रेरित होकर वहाँ एक बौद्ध विहार की स्थापना की । धीरे-धीरे, उसके चारों ओर एक सुरम्य नगर विकसित हो गया।

यह ज्ञात नहीं है कि किसने इस स्थान का नाम श्रीनगर रखा । एक आख्यान के अनुसार यह नाम काफी प्राचीन सारूप्यता के कारण सूर्यनगर से लिया गया है ।

सन् 1947 में जब भारत का विभाजन हो गया, तब जम्मू और कश्मीर के महाराजा को यह विकल्प दिया गया कि वह अपने राज्य का भारत या पाकिस्तान किसी के साथ विलय कर सकते हैं। महाराजा के निर्णय के पूर्व ही पाकिस्तान अधीर हो उठा और उसने अपनी सेना की सहायता से पहाड़ी घुसबैठियों का गिरोह राज्य में भेज दिया । महाराजा ने राज्य का भारत के साथ विलय कर दिया और भारतीय सेना ने उन्हें पीछे खदेड़ दिया। लेकिन लद्दाख जिले का एक भाग पाकिस्तान के अधीन रह गया, क्योंकि राष्ट्रसंघ ने संघर्ष बन्द कर देने की अपील की और युद्ध-विराम की रेखा खींच दी गयी ।

विश्व जानता है कि पाकिस्तान निरन्तर कश्मीर की शांति भंग करता रहा है । भारी मात्रा में सैलानियों को आकृष्ट करनेवाला श्रीनगर वर्षों तक उजाड़ पड़ा रहा । अब परिस्थिति बदल रही है । पाकिस्तान-प्रेरित आतंकवाद क्रमशः कमजोर पड़ता जा रहा है।

पुराने श्रीनगर के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में हैं - चश्मा शाही - बागों के साथ जल-प्रपात, निशात बाग यानी आनन्द का उद्यान, शालीमार बाग - जहाँगीर द्वारा लगाया गया एक दूसरा बाग, हरि पर्वत, शंकराचार्य पर्वत जिसकी चोटी पर शंकराचार्य और श्रीअरविन्द ने ध्यान किया, हजरत बल मस्जिद जिसमें पैगम्बर मुहम्मद का अवशेष सुरक्षित है, आदि; जब कि आधुनिक श्रीनगर होटलों, हाउस बोटों तथा अन्य सुविधाओं से युक्त पर्यटकों के स्वागत के लिए हमेशा तैयार रहता है । यहाँ का प्रमुख पेशा पर्यटन है । सुरम्य वातावरण से घिरी यहाँ की शैक्षणिक संस्थाओं में हैं - जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर विश्वविद्यालय, शेरे-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं शिल्प-विज्ञान विश्वविद्यालय एवं अन्य महाविद्यालय तथा शैक्षणिक परिषदें।

एक तैरता हुआ बाग - एक पुराना चित्र पहली पृष्ठा में शिकारा डल झीला में

घोटाला जिसने दुनिया को सबक सिखाया

प्राचीन एथेंस में ओलम्पिक खेल बड़े जोश और उत्साह के साथ खेले जाते थे । एक दीर्घ अन्तराल के पश्चात उन्हें 6 अप्रैल 1896 से पुनः आरम्भ किया गया ।

प्रारंभिक ओलम्पिक खेलों में विजेता को पारितोषिक में जैतून-पत्र दिया जाता था । यह उसकी गरिमा का प्रतीक था । महत्व सिर्फ़ खिलाड़ी की क्षमता, कौशल, दम और सहनशक्ति को दी जाती थी । किन्तु इन गुणों के साथ-साथ उनमें

विश्व वातायन

चरित्र की श्रेष्ठता, निष्कपटता और सचाई स्वाभाविक रूप से होगी, यह प्राचीन लोगों का सहज विश्वास था ।

ओलम्पिक खेलों को पुनर्जीवित तो किया गया किन्तु पुराने जमाने की खेल-भावना नहीं आयी । कालान्तर में कुछ लोगों के लिए खेल अच्छी आमदनी का साधन बन गया । पहले, खिलाड़ी में एक व्यक्तिगत गर्व का भाव, एक वीर-भावना होती थी । एक समय ऐसा आया जब खिलाड़ी सामूहिक अहं का प्रतिनिधि बन गया । देश के लोगों के आचरण से ऐसा लगने लगा जैसे उनके राष्ट्र की महानता खेल में जीतनेवाले कुछ खिलाड़ियों पर निर्भर है । खिलाड़ी में खेल-भावना नहीं रही । वे या तो पैसे के लिए खेलने लगे या सामूहिक अहं की तुष्टि के लिए ।

कोई भी वस्तु या कार्य जो अपने आदर्श से गिर जाये, अपनी सच्ची भावना खो दे, तो वह विकृत हो जाता है । खिलाड़ियों ने जीतने के लिए नशीले पदार्थों जैसे अप्राकृतिक साधनों का सेवन करना शुरू कर दिया । आज यह नग्न सत्य खुल कर हमारे सामने आ गया है । यद्यपि दक्षिण अफ्रिका की क्रिकेट टीम के कप्तान पर लगाये गये इस आरोप की अभी तक जाँच चल रही है कि उसने भारतीय टीम से जान बूझ कर हार जाने के लिए कुछ लोगों से इसलिए घूस लिया कि भारतीय टीम की संभावी जीत पर सट्टेबाजी करनेवाले काफी मुनाफा कमा सकें; फिर भी, यह स्पष्ट हो गया है कि खेल में भी ऐसे घोटाले होते हैं ।

यह बड़ी ही शर्म की बात है । लेकिन मनुष्य भविष्य में इससे भी अधिक ऐसी शर्मों का सामना करने के लिए बाध्य हो जायेगा यदि इस घटना से उसने कुछ सीखा नहीं । हमें खेलों के पीछे इतना

पागल नहीं हो जाना चाहिये । हम इसे उतना ही महत्व दें जितना उचित हो और ऐसा कभी नहीं समझें कि हमारी तकदीर का फैसला इसी के हाथ में है ।

खेल की शिक्षा देते समय प्रत्येक देश को यह भी शिक्षा देनी चाहिये कि खेल के प्रति सही मनोवृति अपनायें । सही मनोवृति हो तो जीवन की हर चीज़ खेल बन जाती है ।

खेल के परिणाम पर सट्टेबाजी करना कानूनी तौर पर अवैध घोषित किया जाना चाहिये । और ऐसा करनेवालों को सजा अवश्य मिलनी चाहिये । खेलों को कभी भी व्यापार नहीं बनने देना चाहिये ।

प्रसिद्ध लेखक जॉर्ज ऑरवेल ने सच कहा है । वे अपने निबन्ध 'स्पोर्टिंग स्प्रिट' में लिखते हैं : गंभीरतापूर्वक खेले गये खेलों में ईमानदारी नहीं होती । इसमें घृणा, ईर्ष्या, क्रूरता, नियमों के प्रति अनादर की भावना और परपीड़न-कामुकता कूट-कूट कर भरी होती है । दूसरे शब्दों में यह एक युद्ध है जिसमें सिर्फ़ गोलियाँ नहीं चलतीं ।''

उन्होंने हमें स्थिति से अवगत करा दिया है ताकि हम उसे बदल सकें । यदि हम उसे नहीं बदल पायें तो खेल ढोंग या मज़ाक बन कर रह जाता है ।

चित्र
कैप्शन प्रतियोगिता

क्या तुम कुछ शब्दों में ऐसा चित्र परिचय बना सकते हो, जो एक दूसरे से संबंधित चित्रों के अनुकूल हो? तुम एक सामान्य पोस्टकार्ड पर इसे लिख कर इस पते पर भेज सकते हो :

चित्र परिचय
प्रतियोगिता
चन्दामामा
वडपलनि
चेन्नै - 600 026

जो हमारे पास इस माह की 25 तारीख तक पहुँच जाए। सर्वश्रेष्ठ चित्र परिचय पर 100/-रुपये का पुरस्कार दिया जाएगा, जिसका प्रकाशन अगले अंक के बाद के अंक में किया जाएगा।

बधाइयां

अप्रैल अंक के पुरस्कार विजेता हैं :
ममता राय
C/O. एस.पी. राय
टेलिकाम कालोनी, क्वाटर नं -
ओII, 4-B, ओकलैण्ड, शिलांग - 793 001.

विजयी प्रविष्टि :
"घुटनों के बल चल-चल कर, आ जा बहना झूले पर"

फ़्रैंकंस्टाइन मास्क, मुफ़्त !

इन गर्मियों में लाखों रसना पैक्स में है एक आकर्षक उपहार - एक प्रैंकी.
जिनमें से कुछ हैं फन क्रीचर्स. कुछ फन इरेज़र्स. हज़ारों पैक्स* में एक मॉन्स्टर फ़िंगर है.
और साथ में एक पत्र भी. यह पत्र हमें भेज दें. और बदले में पाएँ
एक लाइफ़-साइज़ लैटेक्स फ़्रैंकंस्टाइन मास्क. फ़्री !

*ऑफ़र केवल रसना सॉफ़्ट ड्रिंक कॉन्सन्ट्रेट के 32 ग्लास पैक पर.

पैक्स इस ऑफ़र के बिना भी उपलब्ध.

For more Pranky fun visit: www.gogokid.com

Mudra:RASNA:28 Hin.